1471

॥ श्रीहरिः ॥

सन्ध्या, सन्ध्या-गायत्रीका महत्त्व और ब्रह्मचर्य

गीताप्रेस, गोरखपुर

॥ ॐ श्रीपरमात्मने नमः ॥

अथ सन्ध्या

प्रातःकाल और मध्याह्न-संध्याके समय पूर्वकी ओर तथा सायंकाल-की संध्याके समय पश्चिमकी ओर मुख करके शुद्ध आसनपर बैठकर तिलक करे।

नीचे लिखे मन्त्रको पढ़कर शरीरपर जल छिड़के।

ॐ अपवित्रः पवित्रो वा सर्वावस्थां गतोऽपि वा।
यः स्मरेत् पुण्डरीकाक्षं स बाह्याभ्यन्तरः शुचिः॥

दाहिने हाथमें जल लेकर यह संकल्प पढ़े; संवत्सर, मास, पक्ष, तिथि, वार, गोत्र तथा अपना नाम उच्चारण करे। ब्राह्मण हो तो 'शर्मा' क्षत्रिय हो तो 'वर्मा' और वैश्य हो तो नामके आगे 'गुप्त' शब्द जोड़कर बोले।

ॐ तत्सदद्यैतस्य ब्रह्मणो द्वितीयपरार्धे श्रीश्वेतवाराहकल्पे जम्बूद्वीपे भरतखण्डे आर्यावर्तैकदेशान्तर्गते पुण्यक्षेत्रे कलियुगे कलिप्रथमचरणे अमुकसंवत्सरे अमुकमासे अमुकपक्षे अमुकतिथौ अमुकवासरे अमुकगोत्रोत्पन्नोऽमुकशर्माहं ममोपात्तदुरितक्षयपूर्वकं श्रीपरमेश्वरप्रीत्यर्थं प्रातः [मध्याह्न अथवा सायं] संध्योपासनं कर्म करिष्ये।

नीचे लिखे विनियोगको पढ़कर पृथ्वीपर जल छोड़े।

पृथ्वीति मन्त्रस्य मेरुपृष्ठ ऋषिः सुतलं छन्दः कूर्मो देवता आसने विनियोगः॥

नीचे लिखे मन्त्रको पढ़कर आसनपर जलके छींटे दे।

ॐ पृथ्वि त्वया धृता लोका देवि त्वं विष्णुना धृता।
त्वं च धारय मां देवि पवित्रं कुरु चासनम्॥

फिर बायें हाथमें बहुत-सी कुशा लेकर और दाहिने हाथमें तीन कुशा लेकर पवित्री धारण करे, इसके बाद 'ॐ' के साथ गायत्री-मन्त्र पढ़कर चोटी बाँध ले और ईशान दिशाकी ओर मुख करके आचमन करे।

नीचे लिखा विनियोग पढ़कर पृथ्वीपर जल छोड़ दे।

ऋतं चेति त्र्यृचस्य माधुच्छन्दसोऽघमर्षण ऋषिरनुष्टुप् छन्दो भाववृत्तं दैवतमपामुपस्पर्शने विनियोगः।

नीचे लिखे मन्त्रको पढ़कर पुनः आचमन करे।

ॐ ऋतं च सत्यं चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत। ततो रात्र्यजायत।

ततः समुद्रो अर्णवः। समुद्रादर्णवादधिसंवत्सरो अजायत। अहोरात्राणि विदधद् विश्वस्य मिषतो वशी। सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्व मकल्पयत्। दिवं च पृथिवीं चान्तरिक्षमथो स्वः॥

तदनन्तर 'ॐ' के साथ गायत्री-मन्त्र पढ़कर रक्षाके लिये अपने चारों ओर जल छिड़के।

नीचे लिखे एक-एक विनियोगको पढ़कर पृथ्वीपर जल छोड़ता जाय अर्थात् चारों विनियोगोंके लिये चार बार जल छोड़े।

ॐकारस्य ब्रह्मा ऋषिर्गायत्री छन्दोऽग्निर्देवता शुक्लो वर्णः सर्वकर्मारम्भे विनियोगः॥ सप्तव्याहृतीनां विश्वामित्रजमदग्नि-भरद्वाजगौतमात्रिवसिष्ठकश्यपा ऋषयो गायत्र्युष्णिगनुष्टुब्बृहतीपंक्ति-त्रिष्टुब्जगत्यश्छन्दांस्यग्निवाय्वादित्यबृहस्पतिवरुणेन्द्रविश्वेदेवा देवता अनादिष्टप्रायश्चित्ते प्राणायामे विनियोगः॥ गायत्र्या विश्वामित्र-ऋषिर्गायत्री छन्दः सविता देवताग्निर्मुखमुपनयने प्राणायामे विनियोगः॥ शिरसः प्रजापतिर्ऋषिस्त्रिपदा गायत्री छन्दो ब्रह्माग्निवायुसूर्या देवता यजुः प्राणायामे विनियोगः॥

फिर आँखें बंद करके नीचे लिखे मन्त्रसे तीन बार प्राणायाम करे। पहले अँगूठेसे दाहिना नथुना बंदकर बायें नथुनेसे वायुको अंदर खींचे और ऐसा करता हुआ नाभिदेशमें नीलकमलदलके समान नीलवर्ण चतुर्भुज भगवान् विष्णुका ध्यान करे, यह पूरक प्राणायाम है। इसके बाद अँगूठे और अनामिकासे दोनों नथुने बंद करके वायुको अंदर रोक ले। यों करते हुए हृदयमें कमलके आसनपर विराजमान, रक्तवर्ण चतुर्मुख ब्रह्माका ध्यान करे, यह कुम्भक प्राणायाम है। अनन्तर अँगूठा हटाकर दाहिने नथुनेसे वायुको धीरे-धीरे बाहर निकाल दे। इस समय त्रिनेत्रधारी शुद्ध श्वेतवर्ण शंकरका ललाटमें ध्यान करे, यह रेचक प्राणायाम है।

नीचे लिखे मन्त्रका तीनों ही प्राणायामके समय तीन-तीन बार या एक-एक बार जप करनेका अभ्यास करना चाहिये।

ॐ भूः ॐ भुवः ॐ स्वः ॐ महः ॐ जनः ॐ तपः ॐ सत्यम् ॐ तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात्। ॐ आपो ज्योती रसोऽमृतं ब्रह्म भूर्भुवः स्वरोम्॥

(प्रातःकालका विनियोग और मन्त्र)

नीचे लिखे विनियोगको पढ़कर पृथ्वीपर जल छोड़ दे।

सूर्यश्च मेति ब्रह्मा ऋषिः प्रकृतिश्छन्दः सूर्यो देवता अपामुपस्पर्शने विनियोगः॥

नीचे लिखे मन्त्रको पढ़कर आचमन करे।

ॐ सूर्यश्च मा मन्युश्च मन्युपतयश्च मन्युकृतेभ्यः पापेभ्यो रक्षन्ताम्। यद्रात्र्या पापमकार्षं मनसा वाचा हस्ताभ्यां पद्भ्यामुदरेण शिश्ना रात्रिस्तदवलुम्पतु। यत्किञ्च दुरितं मयि इदमहं माममृतयोनौ सूर्ये ज्योतिषि जुहोमि स्वाहा॥

(मध्याह्नका विनियोग और मन्त्र)

नीचे लिखे विनियोगको पढ़कर पृथ्वीपर जल छोड़ दे।

आपः पुनन्त्विति विष्णुर्ऋषिरनुष्टुप्छन्द आपो देवता अपामुपस्पर्शने विनियोगः॥

नीचे लिखे मन्त्रको पढ़कर आचमन करे।

ॐ आपः पुनन्तु पृथिवीं पृथिवी पूता पुनातु माम्। पुनन्तु ब्रह्मणस्पतिर्ब्रह्मपूता पुनातु माम्। यदुच्छिष्टमभोज्यं च यद्वा दुश्चरितं मम। सर्वं पुनन्तु मामापोऽसतां च प्रतिग्रहꣳस्वाहा॥

(सायंकालका विनियोग और मन्त्र)

नीचे लिखे विनियोगको पढ़कर पृथ्वीपर जल छोड़ दे।

अग्निश्च मेति रुद्र ऋषिः प्रकृतिश्छन्दोऽग्निर्देवता अपामुपस्पर्शने विनियोगः॥

नीचे लिखे मन्त्रको पढ़कर आचमन करे।

ॐ अग्निश्च मा मन्युश्च मन्युपतयश्च मन्युकृतेभ्यः पापेभ्यो रक्षन्ताम्। यदह्ना पापमकार्षं मनसा वाचा हस्ताभ्यां पद्भ्यामुदरेण शिश्ना अहस्तदवलुम्पतु। यत्किञ्च दुरितं मयि इदमहं माममृतयोनौ सत्ये ज्योतिषि जुहोमि स्वाहा॥

नीचे लिखे विनियोगको पढ़कर पृथ्वीपर जल छोड़ दे।

आपो हि ष्ठेत्यादित्र्यृचस्य सिन्धुद्वीप ऋषिर्गायत्री छन्द आपो देवता मार्जने विनियोगः॥

इसके उपरान्त नीचेके मन्त्रोंद्वारा तीन कुशोंसे मार्जन करे, कुशोंके अभावमें तीन अंगुलियोंसे करे, सात पदोंसे सिरपर जल छोड़े। आठवेंमें भूमिपर और नवें पदसे फिर सिरपर मार्जन करे।

ॐ आपो हि ष्ठा मयो भुवः। ॐ ता न ऊर्जे दधातन। ॐ महे रणाय चक्षसे। ॐ यो वः शिवतमो रसः। ॐ तस्य भाजयतेह नः। ॐ उशतीरिव मातरः। ॐ तस्मा अरं गमाम वः। ॐ यस्य क्षयाय जिन्वथ। ॐ आपो जनयथा च नः॥

नीचे लिखे विनियोगको पढ़कर पृथ्वीपर जल छोड़ दे।

द्रुपदादिवेत्यस्य कोकिलो राजपुत्र ऋषिरनुष्टुप्छन्द आपो देवता सौत्रामण्यवभृथे विनियोगः॥

दाहिने हाथमें जल लेकर नीचे लिखे मन्त्रको तीन बार पढ़े, फिर उस जलको सिरपर छिड़क दे।

ॐ द्रुपदादिव मुमुचानः स्विन्नः स्नातो मलादिव। पूतं पवित्रेणेवाज्यमापः शुन्धन्तु मैनसः॥

नीचे लिखे विनियोगको पढ़कर पृथ्वीपर जल छोड़ दे।

अघमर्षणसूक्तस्याघमर्षण ऋषिरनुष्टुप्छन्दो भाववृत्तो देवता अश्वमेधावभृथे विनियोगः॥

दाहिने हाथमें जल लेकर उसे नाकसे लगाकर श्वास आते या जाते समय एक बार या तीन बार नीचे लिखे मन्त्रको पढ़कर जल पृथ्वीपर छोड़ दे।

ॐ ऋतं च सत्यं चाभीद्धात्तपसोऽध्यजायत। ततो रात्र्यजायत। ततः समुद्रो अर्णवः। समुद्रादर्णवादधिसंवत्सरो अजायत। अहोरात्राणि विदधद्विश्वस्य मिषतो वशी। सूर्याचन्द्रमसौ धाता यथापूर्वमकल्पयत्। दिवं च पृथिवीं चान्तरिक्षमथो स्वः॥

नीचे लिखे विनियोगको पढ़कर पृथ्वीपर जल छोड़ दे।

अन्तश्चरसीति तिरश्चीन ऋषिरनुष्टुप्छन्द आपो देवता अपामुपस्पर्शने विनियोगः॥

नीचे लिखे मन्त्रको पढ़कर आचमन कर ले।

ॐ अन्तश्चरसि भूतेषु गुहायां विश्वतोमुखः। त्वं यज्ञस्त्वं वषट्कार आपो ज्योती रसोऽमृतम्॥

फिर सूर्यके सामने एक चरणकी एड़ी (पिछला भाग) उठाये हुए या एक चरणसे खड़ा होकर ओंकार और व्याहृतियोंके सहित गायत्री-मन्त्रको तीन बार जप करके पुष्प मिले हुए जलसे सूर्यको तीन अंजलि दे।

नीचे लिखे चारों विनियोगोंको एक-एक पढ़कर चार बार जल पृथ्वीपर छोड़ दे।

उद्वयमित्यस्य प्रस्कण्व ऋषिरनुष्टुप्छन्दः सूर्यो देवता सूर्योपस्थाने विनियोगः॥ उदुत्यमिति प्रस्कण्व ऋषिर्गायत्री छन्दः सूर्यो देवता सूर्योपस्थाने विनियोगः॥ चित्रमित्यस्य कौत्स ऋषिस्त्रिष्टुप्छन्दः सूर्यो देवता सूर्योपस्थाने विनियोगः॥ तच्चक्षुरिति दध्यङ्ङाथर्वण ऋषिरक्षरातीत-पुरउष्णिक्छन्दः सूर्यो देवता सूर्योपस्थाने विनियोगः॥

नीचे लिखे मन्त्रोंको पढ़कर सूर्यका उपस्थान करे। उपस्थानके समय प्रातःकाल और सायंकाल अंजलि बाँधकर और मध्याह्नमें दोनों बाहोंको ऊपर उठाकर खड़ा रहे।

ॐ उद्वयं तमसस्परि स्वः पश्यन्त उत्तरम्। देवं देवत्रा सूर्यमगन्म ज्योतिरुत्तमम्॥ ॐ उदुत्यं जातवेदसं देवं वहन्ति केतवः। दृशे विश्वाय सूर्यम्॥ ॐ चित्रं देवानामुदगादनीकं चक्षुर्मित्रस्य वरुणस्याग्नेः। आप्रा द्यावापृथिवी अन्तरिक्षꣳसूर्य आत्मा जगतस्तस्थुषश्च॥ ॐ तच्चक्षुर्देवहितं पुरस्ताच्छुक्रमुच्चरत्। पश्येम शरदः शतं जीवेम शरदः शतꣳशृणुयाम शरदः शतं प्रब्रवाम शरदः शतमदीनाः स्याम शरदः शतं भूयश्च शरदः शतात्॥

इसके बाद बैठकर या खड़े-खड़े ही अंगन्यास करे।

एक-एकको पढ़ता जाय और जिस न्यासमें जिस अंगका नाम हो उस अंगपर हाथ लगाता जाय तथा अन्तिमसे एक ताली बजाकर चारों ओर चुटकियाँ बजा दे। यों तीन बार करे।

ॐ हृदयाय नमः। ॐ भूः शिरसे स्वाहा। ॐ भुवः शिखायै वषट्। ॐ स्वः कवचाय हुम्। ॐ भूर्भुवः नेत्राभ्यां वौषट्। ॐ भूर्भुवः स्वः अस्त्राय फट्॥

नीचे लिखे तीनों विनियोगोंको एक-एक पढ़कर पृथ्वीपर तीन बार जल छोड़ दे।

ॐकारस्य ब्रह्मा ऋषिर्गायत्री छन्दोऽग्निर्देवता शुक्लो वर्णो जपे विनियोगः। त्रिव्याहृतीनां प्रजापतिर्ऋषिर्गायत्र्युष्णिगनुष्टुभश्छन्दांस्यग्निवाय्वादित्या देवता जपे विनियोगः। गायत्र्या विश्वामित्र ऋषिर्गायत्री छन्दः सविता देवता जपे विनियोगः॥

नीचे लिखे मन्त्रको पढ़कर इसके अनुसार गायत्रीदेवीका ध्यान करे।

ॐ श्वेतवर्णा समुद्दिष्टा कौशेयवसना तथा।
श्वेतैर्विलेपनैः पुष्पैरलंकारैश्च भूषिता॥
आदित्यमण्डलस्था च ब्रह्मलोकगताथवा।
अक्षसूत्रधरा देवी पद्मासनगता शुभा॥

नीचे लिखा विनियोग पढ़कर पृथ्वीपर जल छोड़ दे।

तेजोऽसीति देवा ऋषयो गायत्री छन्दः शुक्रं दैवतं गायत्र्यावाहने विनियोगः॥

नीचे लिखे मन्त्रोंसे विनयपूर्वक गायत्रीदेवीका आवाहन करे।

ॐ तेजोऽसि शुक्रमस्यमृतमसि। धामनामासि प्रियं देवानामनाधृष्टं देवयजनमसि॥

ॐ गायत्र्यस्येकपदी द्विपदी त्रिपदी चतुष्पद्यपदसि। न हि पद्यसे नमस्ते तुरीयाय दर्शताय पदाय परोरजसेऽसावदो मा प्रापत्॥

फिर गायत्रीके कम-से-कम १०८ मन्त्रोंका जप करे, प्रातःकाल और मध्याह्नके समय सूर्यके सामने खड़ा होकर और सायंकाल पश्चिमकी ओर मुख करके बैठकर जप करना चाहिये।

गायत्री-मन्त्र

ॐ भूर्भुवः स्वः तत्सवितुर्वरेण्यं भर्गो देवस्य धीमहि धियो यो नः प्रचोदयात् ॐ॥

नीचे लिखे मन्त्रको पढ़ते हुए प्रदक्षिणा करे।

यानि कानि च पापानि जन्मान्तरकृतानि च।
तानि तानि प्रणश्यन्ति प्रदक्षिण पदे पदे॥

॥ इति संध्या॥

हरिः ॐ तत्सत्। हरिः ॐ तत्सत्। हरिः ॐ तत्सत्।

अथ सन्ध्याकालनिर्णयः

उत्तमा तारकोपेता मध्यमा लुप्ततारका।
कनिष्ठा सूर्यसहिता प्रातःसंध्या त्रिधा स्मृता॥ १॥
मध्या मध्याह्ने॥ २॥
उत्तमा सूर्यसहिता मध्यमा लुप्तभास्करा।
कनिष्ठा तारकोपेता सायंसन्ध्या त्रिधा स्मृता॥ ३॥
इति सन्ध्याकालनिर्णयः।
हरिः ॐ तत्सत्। हरिः ॐ तत्सत्। हरिः ॐ तत्सत्।

सन्ध्योपासनकी आवश्यकता

अनुरोध*

यज्ञोपवीत धारण करनेवाले सज्जनोंमेंसे जो सज्जन सन्ध्या बिलकुल

---

* उपर्युक्त अनुरोधके अनुसार प्रत्येक द्विजको दोनों समयकी सन्ध्या करनी उचित है। भगवान् सूर्यनारायणके उदय होनेसे पूर्व ही मनुष्यके लिये बिछौनेसे उठ जानेकी विधि है 'ब्राह्मे मुहूर्ते बुध्येत।' (मनु० ४। ९२) ब्राह्ममुहूर्तमें उठना चाहिये। उस समय उठनेसे शारीरिक, मानसिक और आध्यात्मिक सभी तरहका लाभ होता है। इसके पश्चात् यथाविधि शौच-स्नान करके सन्ध्योपासन करना चाहिये। वेदके वचन हैं—
उद्यन्तमस्तयन्तमादित्यमभिध्यायन् कुर्वन् ब्राह्मणो विद्वान् सकलं भद्रमश्नुते॥
सूर्यके उदय और अस्त-समय सर्वदा सन्ध्या करनेवाला विद्वान् समस्त कल्याणको प्राप्त करता है। स्मृतिमें कहा है—
सन्ध्यामुपासते ये तु सततं शंसितव्रताः। विधूतपापास्ते यान्ति ब्रह्मलोकं सनातनम्॥
जो द्विज नित्य सदाचारपरायण रहकर सन्ध्योपासन करते हैं, वे पापोंसे मुक्त होकर सनातन ब्रह्मलोकको प्राप्त होते हैं।
निशायां वा दिवा वापि यदज्ञानकृतं भवेत्। त्रिकालसन्ध्याकरणात् तत्सर्वं विप्रणश्यति॥
(याज्ञवल्क्यस्मृति प्रा० प्र० ५। ३०८)
रात और दिनमें अज्ञानसे जो पाप बन गये हों, वह सब त्रिकाल-सन्ध्या करनेसे नष्ट हो जाते हैं।
सन्ध्याके मन्त्र बड़े ही सुन्दर हैं। उनमें सूर्य और अग्निके रूपसे परब्रह्म परमात्माकी प्रार्थना की गयी है। भगवत्कृपासे सन्ध्या करनेवालेके पाप क्षय होकर उसके हृदयमें महान् सात्त्विक भावोंका विकास हो सकता है। इतना होनेपर भी जो लोग

नहीं करते या केवल एक ही समय करते हैं, उन सबसे मेरी प्रार्थना है कि वे यदि उचित समझें तो इस अनुरोधके पढ़नेके दिनसे ही कम-

सन्ध्या नहीं करते वे बड़ी भूल करते हैं। कहा है—

सन्ध्या येन न विज्ञाता सन्ध्या येनानुपासिता। जीवन्नेव भवेच्छूद्रो मृतः श्वा चाभिजायते॥

जो द्विज सन्ध्या नहीं जानता है और सन्ध्या नहीं करता है, वह जीता हुआ ही शूद्र हो जाता है और मरनेपर कुत्तेकी योनिको प्राप्त होता है।

सन्ध्याहीनोऽशुचिर्नित्यमनर्हः सर्वकर्मसु। यदन्यत् कुरुते कर्म न तस्य फलभाग्भवेत्॥

(दक्षस्मृति २। २३)

सन्ध्याहीन द्विज नित्य ही अपवित्र है और सम्पूर्ण धर्मकार्य करनेमें अयोग्य है। वह जो कुछ अन्य कर्म करता है उसका पूरा फल उसे नहीं मिलता। मनु महाराज कहते हैं—

न तिष्ठति तु यः पूर्वां नोपास्ते यश्च पश्चिमाम्। स शूद्रवद्बहिष्कार्यः सर्वस्माद् द्विजकर्मणः॥

(२। १०३)

जो द्विज प्रातःकाल और सायंकालकी सन्ध्यावन्दन नहीं करता, उसे द्विज-जातिके सम्पूर्ण कर्मोंसे शूद्रकी तरह दूर कर देना चाहिये।

इस सम्बन्धमें शास्त्रोंके अनेक प्रमाण दिये जा सकते हैं पर अधिककी आवश्यकता नहीं। द्विज महानुभावोंको चाहिये कि वे यथासमय कम-से-कम प्रातः-सायं दोनों समय सन्ध्या अवश्य करें। जिन द्विजोंके यज्ञोपवीत न हों वे यज्ञोपवीत-संस्कार करावें। जो एक समय सन्ध्या करते हों वे दोनों समय करना आरम्भ कर दें। प्रत्येक सन्ध्याके साथ प्रणवसहित गायत्रीके कम-से-कम १०८ मन्त्रोंका जप अवश्य करें। प्रणव और गायत्रीकी महिमा बड़ी भारी है।

मनु महाराज कहते हैं—

एतदक्षरमेतां च जपन्व्याहृतिपूर्विकाम्। सन्ध्ययोर्वेदविद्विप्रो वेदपुण्येन युज्यते॥

(२। ७८)

जो वेदवेत्ता विप्र प्रातःकाल और सायंकाल ओंकारका तथा भूः, भुवः और स्वः व्याहृतिपूर्वक गायत्रीका जप करता है उसे वेदाध्ययनका फल मिलता है।

योऽधीतेऽहन्यहन्येतां त्रीणि वर्षाण्यतन्द्रितः। स ब्रह्म परमभ्येति वायुभूतः खमूर्तिमान्॥

(२। ८२)

जो पुरुष प्रतिदिन आलस्यका त्याग कर तीन वर्षतक गायत्रीका जप करता है, वह मृत्युके बाद वायुरूप होता है और उसके बाद आकाशकी तरह व्यापक होकर परब्रह्मको प्राप्त करता है।

इसलिये—

पूर्वां सन्ध्यां जपंस्तिष्ठेत् सावित्रीमार्कदर्शनात्। पश्चिमां तु समासीनः सम्यगृक्षविभावनात्॥

(२। १०१)

प्रातःकालकी सन्ध्याके समय सूर्यके दर्शन जहाँतक हो वहाँतक खड़े रहकर गायत्रीका जप करते रहना चाहिये और सायंकालकी सन्ध्याके समय तारागण जहाँतक न दीखें वहाँतक बैठे-बैठे गायत्रीजप करना चाहिये।

से-कम प्रातः और सायं दोनों कालकी सन्ध्या और दोनों समय (कम-से-कम एक-एक माला एक सौ आठ मन्त्रोंकी) गायत्रीका जप अवश्य आरम्भ कर दें। जो भाई मेरी इस प्रार्थनापर ध्यान देकर इस कार्यका आरम्भ कर देंगे, उनका मैं कृतज्ञ होऊँगा और मुझे आशा है कि उनके इस कार्यसे सनातनधर्मकी वृद्धि और परमेश्वरकी प्रसन्नता होगी तथा उन्हें अपने आत्म-कल्याणमें सहायता मिलेगी।

जो सज्जन अस्वस्थता, अनभ्यास या अन्य किसी कारणसे सायंकाल स्नान न कर सकें, वे हाथ, पैर और मुख धोकर ही सन्ध्या और जप कर सकते हैं।

सन्ध्या-गायत्रीका महत्त्व

सन्ध्योपासन तथा गायत्री-जपका हमारे शास्त्रोंमें बहुत बड़ा महत्त्व कहा गया है। द्विजातिमात्रके लिये इन दोनों कर्मोंको अवश्यकर्तव्य बतलाया गया है। श्रुति भगवती कहती है—'**अहरहः सन्ध्यामुपासीत**' प्रतिदिन बिना नागा सन्ध्योपासन अवश्य करना चाहिये। शास्त्रोंमें तीन प्रकारके कर्मोंका उल्लेख मिलता है—नित्य, नैमित्तिक एवं काम्य। नित्यकर्म उसे कहते हैं, जिसे नित्य नियमपूर्वक—बिना नागा—कर्तव्य-बुद्धिसे एवं बिना किसी फलेच्छाके करनेके लिये शास्त्रोंकी आज्ञा है। नैमित्तिक कर्म वे कहलाते हैं जो किसी विशेष निमित्तको लेकर खास-खास अवसरोंपर आवश्यकरूपसे किये जाते हैं जैसे—पितृपक्ष (आश्विन कृष्णपक्ष)-में पितरोंके लिये श्राद्ध किया जाता है। नैमित्तिक कर्मोंको भी शास्त्रोंमें अवश्यकर्तव्य बतलाया गया है और उन्हें भी कर्तव्यरूपसे बिना किसी फलाभिसन्धिके करनेकी आज्ञा दी गयी है; परन्तु उन्हें नित्य करनेकी आज्ञा नहीं है। यही नित्य और नैमित्तिक कर्मोंमें भेद है। अवश्य

सन्ध्याका विधान प्रातःकाल सूर्योदयसे पूर्व और सायंकाल सूर्यास्तके समयका है, परन्तु यदि कार्यवश समय न सध सके तो कर्म तो अवश्य ही होना चाहिये। कार्यवशात् काललोप हो जाय परन्तु कर्मलोप न हो। —सम्पादक

हो नित्य एवं नैमित्तिक दोनों प्रकारके कर्मोंके न करनेमें दोष बतलाया गया है। तीसरे—काम्यकर्म वे हैं जो किसी कामनासे—किसी फलाभिसन्धिसे किये जाते हैं और जिनके न करनेमें कोई दोष नहीं लगता। उनका करना, न करना सर्वथा कर्ताकी इच्छापर निर्भर है; जैसे—पुत्रकी प्राप्तिके लिये शास्त्रोंमें पुत्रेष्टि-यज्ञका विधान पाया जाता है।

जिसे पुत्रकी कामना हो, वह चाहे तो पुत्रेष्टि-यज्ञ कर सकता है; किन्तु जिसे पुत्र प्राप्त है अथवा जिसे पुत्रकी इच्छा नहीं है या जिसने विवाह ही नहीं किया है अथवा विवाह करके गृहस्थाश्रमका त्याग कर दिया है, उसे पुत्रेष्टि-यज्ञ करनेकी कोई आवश्यकता नहीं है और इस यज्ञके न करनेसे कोई दोष लगता हो, यह बात भी नहीं है; परन्तु नित्यकर्मोंको तो प्रतिदिन करनेकी आज्ञा है, उसमें एक दिनका नागा भी क्षम्य नहीं है और प्रत्येक द्विजातिको जिसने शिखा-सूत्रका त्याग नहीं किया है अर्थात् चतुर्थ आश्रम (संन्यास)-को छोड़कर पहले तीनों आश्रमोंमें नित्यकर्मोंका अनुष्ठान करना ही चाहिये। नित्यकर्म ये हैं—सन्ध्या, तर्पण, बलिवैश्वदेव, स्वाध्याय, जप, होम आदि। इन सबमें सन्ध्या और गायत्री-जप मुख्य है; क्योंकि यह ईश्वरकी उपासना है और बाकी कर्म देवताओं, ऋषियों तथा पितरों आदिके उद्देश्यसे किये जाते हैं। यद्यपि इन सबको भी परमेश्वरकी प्रीतिके लिये ही करना चाहिये।

सन्ध्या न करनेवालोंको तो बड़ा दोषका भागी बतलाया गया है। देवीभागवतमें लिखा है—

सन्ध्या येन न विज्ञाता सन्ध्या येनानुपासिता।
जीवन्नेव भवेच्छूद्रो मृतः श्वा चाभिजायते॥

(११। १६। ६)

'जो द्विज सन्ध्या नहीं जानता और सन्ध्योपासन नहीं करता, वह जीता हुआ ही शूद्र हो जाता है और मरनेपर कुत्तेकी योनिको प्राप्त होता है।' दक्षस्मृतिका वचन है—

सन्ध्याहीनोऽशुचिर्नित्यमनर्हः सर्वकर्मसु।
यदन्यत् कुरुते कर्म न तस्य फलभाग् भवेत्॥

(२। २३)

'सन्ध्याहीन द्विज नित्य ही अपवित्र है और सम्पूर्ण धर्मकार्य करनेमें अयोग्य है। वह जो कुछ अन्य कर्म करता है उसका फल उसे नहीं मिलता।'

भगवान् मनु कहते हैं—

न तिष्ठति तु यः पूर्वां नोपास्ते यश्च पश्चिमाम्।
स शूद्रवद्बहिष्कार्यः सर्वस्माद् द्विजकर्मणः॥

(मनु० २। १०३)

'जो द्विज प्रातःकाल और सायंकालकी सन्ध्या नहीं करता, उसे शूद्रकी भाँति द्विजातियोंके करनेयोग्य सभी कर्मोंसे अलग कर देना चाहिये।'

बात भी बिलकुल ठीक है। यह मनुष्य-जन्म हमें ईश्वरोपासनाके लिये ही मिला है। संसारके भोग तो हम अन्य योनियोंमें भी भोग सकते हैं, परन्तु ईश्वरका ज्ञान प्राप्त करने तथा उनकी आराधना करनेका अधिकार तो हमें मनुष्ययोनिमें ही मिलता है। मनुष्योंमें भी जिनका द्विजाति-संस्कार हो चुका है अर्थात् जिन्हें वेदाध्ययन यानी वेदरूप ईश्वरीय ज्ञान प्राप्त करनेका अधिकार प्राप्त हो चुका है, वे लोग भी यदि नित्य नियमितरूपसे ईश्वरोपासना न करें, तो वे अपने अधिकारका दुरुपयोग करते हैं, उन्हें द्विजाति कहलानेका क्या अधिकार है? जो मनुष्य-जन्म पाकर भी भगवदुपासनासे विमुख रहते हैं, वे मरनेके बाद मनुष्ययोनिसे नीचे गिरा दिये जाते हैं और इस प्रकार भगवान्‌की दयासे जन्म-मरणके चक्करसे छूटनेका जो सुलभ साधन उन्हें प्राप्त हुआ था, उसे अपनी मूर्खतासे खो बैठते हैं। मनुष्योंमें भी जिन्होंने म्लेच्छ, चाण्डाल, शूद्र आदि योनियोंसे ऊपर उठकर द्विज-शरीर प्राप्त किया है, वे भी यदि ईश्वरकी आराधना नहीं करते, वेदरूपी ईश्वरीय आज्ञाका उल्लघंन करते हैं, उन्हें यदि मरनेपर कुत्ते आदिकी योनि मिले तो इसमें आश्चर्य ही क्या है? अतः प्रत्येक द्विज कहलानेवालेको चाहिये कि वह नित्य नियमपूर्वक दोनों समय (अर्थात् प्रातःकाल एवं सायंकाल) वैदिक विधिसे अर्थात् वेदोक्त मन्त्रोंसे सन्ध्योपासन करे। यों तो शास्त्रोंमें प्रातः, मध्याह्न एवं सायंकाल—तीनों समय ही सन्ध्या करनेका विधान है; परन्तु जिन लोगोंको मध्याह्नके समय जीविकोपार्जनके कार्यसे अवकाश न मिले अथवा

और जो किसी अड़चनके कारण मध्याह्नकालकी सन्ध्याको बराबर न निभा सकें, उन्हें चाहिये कि वे दिनमें कम-से-कम दो बार अर्थात् प्रातःकाल और सायंकाल तो नियमितरूपसे सन्ध्या अवश्य ही करें।

सन्ध्यामें क्रियाकी प्रधानता तो है ही; परन्तु जिस-जिस मन्त्रका जिस-जिस क्रियामें विनियोग है, उस-उस क्रियाको विधिपूर्वक करते हुए उस मन्त्रका शुद्ध उच्चारण भी करना चाहिये और साथ-साथ उस मन्त्रके अर्थकी ओर लक्ष्य रखते हुए उसी भावमें भावित होनेकी चेष्टा करनी चाहिये। उदाहरणतः **'सूर्यश्च मा०'** इस मन्त्रका शुद्ध उच्चारण करके आचमन करना चाहिये और साथ ही इस मन्त्रके अर्थकी ओर लक्ष्य रखते हुए यह भावना करनी चाहिये कि जिस प्रकार यह अभिमन्त्रित जल मेरे मुँहमें जा रहा है उसी प्रकार मन, वचन, कर्मसे मैंने व्यतीत रात्रिमें जो-जो पाप किये हों वे सब रात्रिके अभिमानी देवताके द्वारा नष्ट किये जा रहे हैं और इस समय जो भी पाप मेरे अन्दर हों वे सब भगवान् सूर्यकी ज्योतिमें विलीन हो रहे हैं, भस्म हो रहे हैं; भगवान्‌के तेजके सामने पापोंकी ताकत ही क्या है कि जो वे ठहर सकें।

आजकल कुछ लोग कहते हैं कि सन्ध्याका अर्थ है ईश्वरोपासना। ईश्वरकी दृष्टिमें सभी भाषाएँ समान हैं और सभी भाषाओंमें की हुई प्रार्थना एवं स्तुति उनके पास पहुँच सकती है; क्योंकि सभी भाषाएँ उन्हींकी रची हुई हैं और ऐसी कोई भाषा नहीं है, जिसे वे न समझते हों। फिर क्यों न हमलोग अपनी मातृभाषामें ही उनकी स्तुति एवं प्रार्थना करें? संस्कृत अथवा वैदिक भाषाकी अपेक्षा अपनी निजकी भाषामें हम अपने भावोंको अधिक स्पष्टरूपमें व्यक्त कर सकते हैं। जिस समय देशमें वैदिक अथवा संस्कृत भाषा बोली जाती रही हो, उस समय लोगोंका वैदिक मन्त्रोंके द्वारा सन्ध्या करना ठीक रहा; परन्तु वर्तमान युगमें जबकि संस्कृतके जाननेवाले लोग बहुत कम रह गये हैं—यहाँतक कि वैदिक मन्त्रोंके उच्चारणमें ही लोगोंको कठिनाईका अनुभव होता है, उनका अर्थ जानना और उनके भावमें भावित होना तो दूर रहा—इस लकीरको पीटनेसे क्या लाभ, बल्कि ईश्वर तो घट-घटमें व्यापक हैं, वे तो हमारे हृदयकी सूक्ष्मतम बातोंको भी जानते हैं।

उनके लिये तो भाषाके आडम्बरकी आवश्यकता ही नहीं है। उनके सामने तो हृदयकी मूक प्रार्थना ही पर्याप्त है। बल्कि सच्ची प्रार्थना तो हृदयकी ही होती है। बिना हृदयके केवल तोतेकी भाँति रटे हुए कुछ शब्दोंके उच्चारणमात्रसे क्या होता है।

यह शंका सर्वथा निर्मूल नहीं है। ईश्वरकी दृष्टिमें अवश्य ही भाषाका कोई विशेष महत्त्व नहीं है। उनकी दृष्टिमें सभी भाषाएँ समान हैं और सभी भाषाओंमें की हुई प्रार्थनाको वे सुनते और उत्तर चाहनेपर उसी भाषामें वे उसका उत्तर भी देते हैं। यह भी ठीक है कि प्रार्थनामें भावकी प्रधानता है, उसका सम्बन्ध हृदयसे है और अपने भावोंको जितने स्पष्टरूपमें हम अपनी मातृभाषामें रख सकते हैं, उतना स्पष्ट हम और किसी भाषामें नहीं रख सकते। यह भी निर्विवाद है कि हृदयकी मूक प्रार्थना जितना काम कर सकती है, केवल कुछ चुने हुए शब्दोंके उच्चारणमात्रसे वह कार्य नहीं बन सकता। इन सब बातोंको स्वीकार करते हुए भी हम सन्ध्याको उसी रूपमें करनेके पक्षपाती हैं, जिस रूपमें उसके करनेका शास्त्रोंमें विधान है और जिस रूपमें लाखों-करोड़ों वर्षोंसे, बल्कि अनादि कालसे हमारे पूर्वज उसे करते आये हैं।

सन्ध्यामें ईश्वरकी स्तुति, ध्यान और प्रार्थना है और उसके उतने अंशकी पूर्ति अपनी मातृभाषामें, अपने ही शब्दोंमें की हुई प्रार्थनासे भी अथवा हृदयकी मूक प्रार्थनासे भी हो सकती है। जो लोग इस रूपमें प्रार्थना करना चाहते हैं अथवा करते हैं, वे अवश्य ऐसा करें। उनका हम विरोध नहीं करते, बल्कि हृदयसे समर्थन ही करते हैं; क्योंकि वैदिक मन्त्रोंके उच्चारणका सबको अधिकार भी नहीं है और न सबका उनमें विश्वास ही है। अन्यान्य मतों एवं मजहबोंकी भाँति सनातन वैदिक धर्मकी मान्यता यह नहीं है कि अन्य मतावलम्बियोंको ईश्वरकी प्राप्ति हो ही नहीं सकती, उनके लिये ईश्वरका द्वार बन्द है। अधिकार न होनेके कारण जो लोग वैदिक मन्त्रोंका उच्चारण नहीं कर सकते अथवा जिनका वैदिक धर्ममें विश्वास नहीं है, वे लोग अपने-अपने ढंगकी प्रार्थनाके द्वारा ईश्वरकी प्रसन्नता प्राप्त कर सकते हैं और जिन्हें वैदिक सन्ध्या करनेका अधिकार प्राप्त है, वे लोग भी इस रूपमें प्रार्थना

कर सकते हैं; परन्तु उन्हें सन्ध्याका परित्याग नहीं करना चाहिये। सन्ध्याके साथ-साथ वे ईश्वरको रिझानेके लिये चाहे जितने और साधन भी कर सकते हैं। ये सभी साधन एक-दूसरेके सहायक ही हैं, विरोधी नहीं। सबका अपना-अपना अलग-अलग महत्त्व है, कोई किसीसे छोटा अथवा बड़ा नहीं कहा जा सकता।

यह ठीक है कि ईश्वरकी दृष्टिमें भाषाका कोई विशेष महत्त्व नहीं है और वैदिक भाषा भी अन्य भाषाओंकी भाँति अपने हार्दिक अभिप्रायको व्यक्त करनेका एक साधनमात्र है; परन्तु वैदिक धर्मावलम्बियोंकी धारणा इस सम्बन्धमें कुछ दूसरी ही है। उनकी दृष्टिमें वेद अपौरुषेय हैं, वे किसी मनुष्यके बनाये हुए नहीं हैं। वे साक्षात् ईश्वरके निःश्वास हैं, ईश्वरकी वाणी हैं, '**यस्य निःश्वसितं वेदाः।**' ऋषिलोग उनके द्रष्टामात्र हैं—'**ऋषयो मन्त्रद्रष्टारः।**' अनुभव करनेवाले हैं, रचयिता नहीं। सृष्टिके आदिमें भगवान् नारायण पहले-पहल ब्रह्माको उत्पन्न करते हैं और फिर उन्हें वेदोंका उपदेश देते हैं—

यो ब्रह्माणं विदधाति पूर्वं
यो वै वेदांश्च प्रहिणोति तस्मै.........

(श्वेताश्वतर० ६। १८)

इसीलिये हम वैदिक धर्मावलम्बियोंके लिये वेद बड़े महत्त्वकी वस्तु हैं। वेद ही ईश्वरीय ज्ञानके अनादि स्रोत हैं। उन्हींसे सारा ज्ञान निकला है। धर्मका आधार भी वेद ही हैं। हमारे कर्तव्य-अकर्तव्यके निर्णायक वेद ही हैं। सारे शास्त्र वेदके ही आधारको लेकर चलते हैं। स्मृति-आगम-पुराणादि शास्त्रोंकी प्रमाणता वेदमूलक ही है। जहाँ श्रुति और स्मृतिका परस्पर विरोध दृष्टिगोचर हो, वहाँ श्रुतिको ही बलवान् माना जाता है। तात्पर्य यह है कि वेद हमारे सर्वस्व हैं, वेद हमारे प्राण हैं, वेदोंपर ही हमारा जीवन अवलम्बित है, वेद ही हमारे आधारस्तम्भ हैं। वेदोंकी जितनी भी महिमा गायी जाय, थोड़ी है।

जिन वेदोंकी हमारे शास्त्रोंमें इतनी महिमा है, उन वेदोंके अंगभूत मन्त्रोंकी अन्य किसी भाषा अथवा अन्य किसी वाक्य-रचनाके साथ

तुलना नहीं की जा सकती। भावोंको व्यक्त करनेके लिये भाषाकी सहायता आवश्यक होती ही है। भाषा और भावका परस्पर अविच्छेद सम्बन्ध है। हमारे शास्त्रोंने तो शब्दको भी अनादि, नित्य एवं ब्रह्मरूप ही माना है तथा वाच्य एवं वाचकका अभेद स्वीकार किया है। इसी प्रकार वैदिक मन्त्रोंका भी अपना एक विशेष महत्त्व है। उनमें एक विशेष शक्ति निहित है, जो उनके उच्चारणमात्रसे प्रकट हो जाती है, अर्थकी ओर लक्ष्य रखते हुए उच्चारण करनेपर तो वह और भी जल्दी आविर्भूत होती है। इसके अतिरिक्त अनादि कालसे इतने असंख्य लोगोंने उनकी आवृत्ति एवं अनुष्ठान करके उन्हें जगाया है कि उन सबकी शक्ति भी उनके अन्दर संक्रान्त हो गयी है। ऐसी दशामें तोतेकी भाँति बिना समझे हुए भी उनका स्वरसहित शुद्ध उच्चारण करनेका कम महत्त्व नहीं है; फिर अर्थको समझते हुए उनके भावमें भावित होकर श्रद्धा और प्रेमपूर्वक उनके उच्चारणका तो इतना अधिक महत्त्व है कि जिसका वर्णन नहीं हो सकता। वह तो सोनेमें सुगन्धका काम करता है। यही नहीं, वैदिक मन्त्रोंके उच्चारणका तो एक अलग शास्त्र ही है, उसकी तो एक-एक मात्रा और एक-एक स्वरका इतना महत्त्व है कि उसके उच्चारणमें जरा-सी भी त्रुटि हो जानेसे अभिप्रेत अर्थसे विपरीत अर्थका बोध हो सकता है। कहा भी है—

एकः शब्दः स्वरतो वर्णतो वा
मिथ्याप्रयुक्तो न तमर्थमाह।

'वेदमन्त्रके एक शब्दका भी यदि ठीक प्रयोग न हुआ, उसके स्वर, मात्रा या अक्षरके उच्चारणमें त्रुटि हो गयी, तो उससे अभीष्ट अर्थका प्रतिपादन नहीं होता।'

यही कारण है कि लाखों-करोड़ों वर्षोंसे वैदिक लोग परम्परासे पद, क्रम, घन और जटासहित वैदिक मन्त्रोंको सस्वर कण्ठस्थ करते आये हैं और इस प्रकार उन्होंने वैदिक परम्परा और वैदिक साहित्यको जीवित रखा है। इसलिये वैदिक मन्त्रोंकी उपयोगिताके विषयमें शंका न करके द्विजातिमात्रको उपनयन-संस्कारके बाद सन्ध्याको अर्थसहित

सीख लेना चाहिये और फिर कम-से-कम सायंकाल और प्रातःकाल दोनों सन्धियोंके समय श्रद्धा-प्रेम और विधिपूर्वक अनुष्ठान करना चाहिये। ऐसा करनेसे उन्हें बहुत जल्दी लाभ प्रतीत होगा और फिर वे इसे कभी छोड़ना न चाहेंगे।

इसके अतिरिक्त द्विजातिमात्रको नित्य नियमपूर्वक सन्ध्या करनेके लिये वेदोंकी स्पष्ट आज्ञा है, जैसा कि हम ऊपर कह आये हैं। उस आज्ञाका पालन करनेके लिये भी हमें सन्ध्योपासन नित्य करना चाहिये; क्योंकि वेद ईश्वरकी वाणी होनेके कारण हमारे लिये परम मान्य हैं और उनकी आज्ञाकी अवहेलना करना हमारे लिये अत्यन्त हानिकर है। इस दृष्टिसे भी सन्ध्योपासन करना परमावश्यक है। पुराने जमानेमें तो लोग पूरा वेद या फिर कम-से-कम अपनी शाखा पूरी कण्ठ किया करते थे और इसके लिये वेदोंकी स्पष्ट आज्ञा भी है—'**स्वाध्यायोऽध्येतव्यः**' वेदोंका अध्ययन अवश्य करना चाहिये। यदि हमलोग पूरा वेद अथवा पूरी शाखा कण्ठ नहीं कर सकते तो कम-से-कम सन्ध्यामात्र तो अवश्य कण्ठ कर लेनी चाहिये और उसका प्रतिदिन अनुष्ठान करना चाहिये, जिससे वैदिक संस्कृतिका लोप न हो और हमलोग अपने स्वरूप और धर्मकी रक्षा कर सकें। नियमपालन और संगठनकी दृष्टिसे भी इसकी बड़ी आवश्यकता है। नहीं तो एक दिन हमलोग विजातीय संस्कारोंके प्रवाहमें बहकर अपना सब कुछ गवाँ बैठेंगे और अन्य प्राचीन जातियोंकी भाँति हमारा भी नाममात्र शेष रह जायगा। वह दिन जल्दी न आवे, इसके लिये हमें सतर्क हो जाना चाहिये और यदि हम संसारमें जीवित रहना चाहते हैं तो हमें अपनी प्राचीन संस्कृतिकी रक्षाके लिये कटिबद्ध हो जाना चाहिये। भगवान् तो हमारे और हमारी संस्कृतिके सहायक हैं ही; अन्यथा इसपर ऐसे-ऐसे प्रबल आक्रमण हुए कि उनके आघातसे वह कभीकी नष्ट हो गयी होती।

सन्ध्याकी हमारे शास्त्रोंने बड़ी महिमा गायी है। वेदोंमें कहा है—

'**उद्यन्तमस्तंयन्तमादित्यमभिध्यायन् कुर्वन् ब्राह्मणो विद्वान् सकलं भद्रमश्नुते।**' (तै० आ० प्र० २ अ० २)

अर्थात् 'उदय और अस्त होते हुए सूर्यकी उपासना करनेवाला विद्वान् ब्राह्मण सब प्रकारके कल्याणको प्राप्त करता है।'

महर्षि याज्ञवल्क्य कहते हैं—

निशायां वा दिवा वापि यदज्ञानकृतं भवेत्।
त्रिकालसन्ध्याकरणात्तत्सर्वं विप्रणश्यति॥

(प्रा० प्र० ५। ३०८)

'दिनमें या रात्रिके समय अनजानमें जो पाप बन जाता है, वह सारा ही तीनों कालकी सन्ध्या करनेसे नष्ट हो जाता है।'

महर्षि कात्यायनका वचन है—

सन्ध्यालोपस्य चाकर्ता स्नानशीलश्च यः सदा।
तं दोषा नोपसर्पन्ति गरुत्मन्तमिवोरगाः॥

(११। १६)

'जो प्रतिदिन स्नान करता है तथा कभी सन्ध्या-कर्मका लोप नहीं करता, दोष उसके पास कभी नहीं फटकते; जैसे—गरुड़जीके पास सर्प नहीं जाते।'

समयकी गति सूर्यके द्वारा नियमित होती है। सूर्यभगवान् जब उदय होते हैं, तब दिनका प्रारम्भ तथा रात्रिका शेष होता है; इसको प्रातःकाल भी कहते हैं। जब वे आकाशके शिखरपर आरूढ़ होते हैं, उस समयको दिनका मध्य अथवा मध्याह्न कहते हैं और जब वे अस्ताचलको जाते हैं, तब दिनका शेष एवं रात्रिका प्रारम्भ होता है। इसे सायंकाल भी कहते हैं। ये तीन काल उपासनाके मुख्य काल माने गये हैं। यों तो जीवनका प्रत्येक क्षण उपासनामय होना चाहिये, परन्तु इन तीन कालोंमें तो भगवान्‌की उपासना नितान्त आवश्यक बतलायी गयी है। इन तीनों समयकी उपासनाका नाम ही क्रमशः प्रातःसन्ध्या, मध्याह्नसन्ध्या और सायंसन्ध्या है। प्रत्येक वस्तुकी तीन अवस्थाएँ होती हैं—उत्पत्ति, पूर्ण विकास और विनाश। जीवनकी भी तीन ही दशाएँ होती हैं—जन्म, पूर्ण युवावस्था और मृत्यु। हमें इन अवस्थाओंका स्मरण दिलानेके लिये तथा इस प्रकार हमारे अन्दर संसारके प्रति वैराग्यकी भावना जाग्रत् करनेके

लिये ही मानो सूर्यभगवान् प्रतिदिन उदय होने, उन्नतिके शिखरपर आरूढ़ होने और फिर अस्त होनेकी लीला करते हैं। भगवान्‌की इस त्रिविध लीलाके साथ ही हमारे शास्त्रोंने तीन कालकी उपासना जोड़ दी है।

भगवान् सूर्य परमात्मा नारायणके साक्षात् प्रतीक हैं, इसीलिये वे सूर्यनारायण कहलाते हैं। यही नहीं, सर्गके आदिमें भगवान् नारायण ही सूर्यरूपमें प्रकट होते हैं; इसीलिये पंचदेवोंमें सूर्यकी भी गणना है। यों भी वे भगवान्‌की प्रत्यक्ष विभूतियोंमें सर्वश्रेष्ठ, हमारे इस ब्रह्माण्डके केन्द्र, स्थूल कालके नियामक, तेजके महान् आकार, विश्वके पोषक एवं प्राणदाता तथा समस्त चराचर प्राणियोंके आधार हैं। वे प्रत्यक्ष दीखनेवाले सारे देवोंमें श्रेष्ठ हैं। इसीलिये सन्ध्यामें सूर्यरूपसे ही भगवान्‌की उपासना की जाती है। उनकी उपासनासे हमारे तेज, बल, आयु एवं नेत्रोंकी ज्योतिकी वृद्धि होती है और मरनेके समय वे हमें अपने लोकमेंसे होकर भगवान्‌के परमधाममें ले जाते हैं; क्योंकि भगवान्‌के परमधामका रास्ता सूर्यलोकमेंसे होकर ही गया है। शास्त्रोंमें लिखा है कि योगीलोग तथा कर्तव्यरूपसे युद्धमें शत्रुके सम्मुख लड़ते हुए प्राण देनेवाले क्षत्रिय वीर सूर्यमण्डलको भेदकर भगवान्‌के धामको चले जाते हैं। हमारी आराधनासे प्रसन्न होकर भगवान् सूर्य यदि हमें भी उस लक्ष्यतक पहुँचा दें तो इसमें उनके लिये कौन बड़ी बात है। भगवान् अपने भक्तोंपर सदा ही अनुग्रह करते आये हैं। हम यदि जीवनभर नियमपूर्वक श्रद्धा एवं भक्तिके साथ निष्कामभावसे उनकी आराधना करेंगे, तो क्या वे मरते समय हमारी इतनी भी मदद नहीं करेंगे? अवश्य करेंगे। भक्तोंकी रक्षा करना तो भगवान्‌का विरद ही ठहरा। अतः जो लोग आदरपूर्वक तथा नियमसे बिना नागा तीनों समय अथवा कम-से-कम दो समय (प्रातःकाल एवं सायंकाल) ही भगवान् सूर्यकी आराधना करते हैं, उन्हें विश्वास करना चाहिये कि उनका कल्याण निश्चित है और वे मरते समय भगवान् सूर्यकी कृपासे अवश्य परम गतिको प्राप्त होंगे।

इस प्रकार युक्तिसे भी भगवान् सूर्यकी उपासना हमारे लिये अत्यन्त कल्याणकारक, थोड़े परिश्रमके बदलेमें महान् फल देनेवाली, अतएव

अवश्यकर्तव्य है। अतः द्विजातिमात्रको चाहिये कि वे लोग नियमपूर्वक त्रिकालसन्ध्याके रूपमें भगवान् सूर्यकी उपासना किया करें और इस प्रकार लौकिक एवं पारमार्थिक दोनों प्रकारके लाभ उठावें। आशा है, सभी लोग इस सस्ते सौदेको सहर्ष स्वीकार करेंगे; इसमें खर्च एक पैसेका भी नहीं है और समय भी बहुत कम लगता है, परन्तु इसका फल अत्यन्त महान् है। इसलिये सब लोगोंको श्रद्धा, प्रेम एवं लगनके साथ इस कर्मके अनुष्ठानमें लग जाना चाहिये। फिर सब प्रकारसे मंगल-ही-मंगल है।

जब कोई हमारे पूज्य महापुरुष हमारे नगरमें आते हैं और उसकी सूचना हमें पहलेसे मिली हुई रहती है तो हम उनका स्वागत करनेके लिये अर्घ्य, चन्दन, फूल, माला आदि पूजाकी सामग्री लेकर पहलेसे ही स्टेशनपर पहुँच जाते हैं, उत्सुकतापूर्वक उनकी बाट जोहते हैं और आते ही उनका बड़ी आवभगत एवं प्रेमके साथ स्वागत करते हैं। हमारे इस व्यवहारसे उन आगन्तुक महापुरुषको बड़ी प्रसन्नता होती है और यदि हम निष्कामभावसे अपना कर्तव्य समझकर उनका स्वागत करते हैं तो वे हमारे इस प्रेमके आभारी बन जाते हैं और चाहते हैं कि किस प्रकार बदलेमें वे भी हमारी कोई सेवा करें। हम यह भी देखते हैं कि कुछ लोग अपने पूज्य पुरुषके आगमनकी सूचना होनेपर भी उनके स्वागतके लिये समयपर स्टेशन नहीं पहुँच पाते और जब वे गाड़ीसे उतरकर प्लेटफार्मपर पहुँच जाते हैं तब दौड़े हुए आते हैं और देरके लिये क्षमा-याचना करते हुए उनकी पूजा करते हैं। और कुछ इतने आलसी होते हैं कि जब हमारे पूज्य पुरुष अपने डेरेपर पहुँच जाते हैं और अपने कार्यमें लग जाते हैं, तब वे धीरे-धीरे फुरसतसे अपना और सब काम निपटाकर आते हैं और उन आगन्तुक महानुभावकी पूजा करते हैं। वे महानुभाव तो तीनों प्रकारके स्वागत करनेवालोंकी पूजासे प्रसन्न होते हैं और उनका उपकार मानते हैं। पूजा न करनेवालोंकी अपेक्षा देर-सबेर करनेवाले भी अच्छे हैं; किन्तु दर्जेका फरक तो रहता ही है। जो जितनी तत्परता, लगन, प्रेम एवं आदरबुद्धिसे पूजा करते

हैं, उनकी पूजा उतनी ही महत्त्वकी और मूल्यवान् होती है तथा पूजा ग्रहण करनेवालेको उससे उतनी ही प्रसन्नता होती है।

ऊपर जो बात आगन्तुक महापुरुषकी पूजाके सम्बन्धमें कही गयी है, वही बात सन्ध्याके सम्बन्धमें भी समझनी चाहिये। भगवान् सूर्यनारायण प्रतिदिन सबेरे हमारे इस भूमण्डलपर महापुरुषकी भाँति पधारते हैं; उनसे बढ़कर हमारा पूज्यपात्र और कौन होगा। अतः हमें चाहिये कि हम ब्राह्ममुहूर्तमें उठकर शौच-स्नानादिसे निवृत्त होकर शुद्ध वस्त्र पहनकर उनका स्वागत करनेके लिये उनके आगमनसे पूर्व ही तैयार हो जायँ और आते ही बड़े प्रेमसे चन्दन, पुष्प आदिसे युक्त शुद्ध ताजे जलसे उन्हें अर्घ्य प्रदान करें, उनकी स्तुति करें, जप करें। भगवान् सूर्यको तीन बार गायत्रीमन्त्रका उच्चारण करते हुए अर्घ्य प्रदान करना, गायत्रीमन्त्रका (जिसमें उन्हींकी परमात्मभावसे स्तुति की गयी है और उनसे बुद्धिको परमात्ममुखी करनेके लिये प्रार्थना की गयी है) जप करना और खड़े होकर उनका उपस्थान करना, स्तुति करना—यही सन्ध्योपासनके मुख्य अंग हैं, शेष कर्म इन्हींके अंगभूत एवं सहायक हैं। जो लोग सूर्योदयके समय सन्ध्या करने बैठते हैं, वे एक प्रकारसे अतिथिके स्टेशनपर पहुँच जाने और गाड़ीसे उतर जानेपर उनकी पूजा करने दौड़ते हैं तथा जो लोग सूर्योदय हो जानेके बाद फुरसतसे अन्य आवश्यक कार्योंसे निवृत्त होकर सन्ध्या करने बैठते हैं, वे मानो अतिथिके अपने डेरेपर पहुँच जानेपर धीरे-धीरे उनका स्वागत करने पहुँचते हैं।

जो लोग सन्ध्योपासन करते ही नहीं, उनकी अपेक्षा तो वे ही अच्छे हैं, जो देर-सबेर कुछ भी खानेके पूर्व सन्ध्या कर लेते हैं। उनके द्वारा कर्मका अनुष्ठान तो हो ही जाता है और इस प्रकार शास्त्रकी आज्ञाका निर्वाह हो जाता है। वे कर्मलोपके प्रायश्चित्तके भागी नहीं होते। उनकी अपेक्षा वे अच्छे हैं, जो प्रातःकालमें तारोंके लुप्त हो जानेपर सन्ध्या प्रारम्भ करते हैं। और उनसे भी श्रेष्ठ वे हैं, जो उषाकालमें ही तारे रहते सन्ध्या करने बैठ जाते हैं, सूर्योदय होनेतक खड़े होकर गायत्री-मन्त्रका जप करते हैं और इस प्रकार अपने पूज्य

आगन्तुक महापुरुषकी प्रतीक्षामें, उन्हींके चिन्तनमें उतना समय व्यतीत करते हैं और उनका पदार्पण—उनका दर्शन होते ही जप बन्द कर उनकी स्तुति—उनका उपस्थान करते हैं।* इसी बातको लक्ष्यमें रखकर सन्ध्याके उत्तम, मध्यम और अधम—तीन भेद किये गये हैं।

उत्तमा तारकोपेता मध्यमा लुप्ततारका।
अधमा सूर्यसहिता प्रातःसन्ध्या त्रिधा मता॥

(देवीभागवत ११। १६। ४)

प्रातःसन्ध्याके लिये जो बात कही गयी है, सायंसन्ध्याके लिये उससे विपरीत बात समझनी चाहिये अर्थात् सायंसन्ध्या उत्तम वह कहलाती है, जो सूर्यके रहते की जाय; मध्यम वह है, जो सूर्यास्त होनेपर की जाय और अधम वह है, जो तारोंके दिखायी देनेपर की जाय—

उत्तमा सूर्यसहिता मध्यमास्तमिते रवौ।
अधमा तारकोपेता सायंसन्ध्या त्रिधा मता॥

(देवीभागवत ११। १६। ५)

कारण यह है कि अपने पूज्य पुरुषके विदा होते समय पहलेहीसे सब काम छोड़कर जो उनके साथ-साथ स्टेशन पहुँचता है, उन्हें आरामसे गाड़ीपर बिठानेकी व्यवस्था कर देता है और गाड़ीके छूटनेपर हाथ जोड़े हुए प्लेटफार्मपर खड़ा-खड़ा प्रेमसे उनकी ओर ताकता रहता है तथा गाड़ीके आँखोंसे ओझल हो जानेपर ही स्टेशनसे लौटता है, वही मनुष्य उनका सबसे अधिक सम्मान करता है और प्रेमपात्र बनता है। जो मनुष्य ठीक गाड़ीके छूटनेके समय हाँफता हुआ स्टेशनपर पहुँचता है और चलते-चलते दूरसे अतिथिके दर्शन कर पाता है वह निश्चय ही अतिथिकी दृष्टिमें उतना प्रेमी नहीं ठहरता, यद्यपि उसके प्रेमसे भी महानुभाव अतिथि प्रसन्न ही होते हैं और उसके ऊपर प्रेमभरी दृष्टि रखते हैं। उससे भी नीचे दर्जेका प्रेमी वह समझा जाता है, जो अतिथिके चले जानेपर पीछेसे स्टेशन पहुँचता है और फिर पत्रद्वारा अपने देरीसे

* पूर्वां सन्ध्यां सनक्षत्रामुपासीत यथाविधि। गायत्रीमभ्यसेत्तावद् यावदादित्यदर्शनम्॥
(हारीतस्मृति ४। १८)

पहुँचनेकी सूचना देता है तथा क्षमा-याचना करता है। महानुभाव अतिथि उसके भी आतिथ्यको मान लेते हैं और उसपर प्रसन्न ही होते हैं।

यहाँ यह नहीं मानना चाहिये कि भगवान् भी साधारण मनुष्योंकी भाँति राग-द्वेषसे युक्त हैं, वे पूजा करनेवालेपर प्रसन्न होते हैं और न करनेवालोंपर नाराज होते हैं या उनका अहित करते हैं। भगवान्‌की सामान्य कृपा तो सबपर समानरूपसे रहती है। सूर्यनारायण अपनी उपासना न करनेवालोंको भी उतना ही ताप एवं प्रकाश देते हैं, जितना वे उपासना करनेवालोंको देते हैं। उसमें न्यूनाधिकता नहीं होती। हाँ, जो लोग उनसे विशेष लाभ उठाना चाहते हैं, जीवन-मरणके चक्रसे छूटना चाहते हैं, उनके लिये तो उनकी उपासनाकी आवश्यकता है ही और उसमें आदर और प्रेमकी दृष्टिसे तारतम्य भी होता ही है। भगवान्‌ने गीतामें भी कहा है—

समोऽहं सर्वभूतेषु न मे द्वेष्योऽस्ति न प्रियः।
ये भजन्ति तु मां भक्त्या मयि ते तेषु चाप्यहम्॥

(९।२९)

'मैं सब भूतोंमें समभावसे व्यापक हूँ, न कोई मेरा अप्रिय है न प्रिय है; परन्तु जो भक्त मुझको प्रेमसे भजते हैं, वे मुझमें हैं और मैं भी उनमें प्रत्यक्ष प्रकट हूँ।'

ऊपरके विवेचनसे यह स्पष्ट हो जाता है कि सन्ध्याके सम्बन्धमें पहली बात तो यह है कि उसे नित्य नियमपूर्वक किया जाय, कालका लोप हो जाय तो कोई बात नहीं किन्तु कर्मका लोप न हो। इस प्रकार सन्ध्या करनेवाला भी न करनेवालेसे श्रेष्ठ है। दूसरी बात यह है कि जहाँतक सम्भव हो, तीनों कालकी सन्ध्या ठीक समयपर की जाय अर्थात् प्रातःसन्ध्या सूर्योदयसे पूर्व और सायंसन्ध्या सूर्यास्तसे पूर्व की जाय और मध्याह्नसन्ध्या ठीक दोपहरके समय की जाय। समयकी पाबन्दी रखनेसे नियमकी पाबन्दी तो अपने-आप हो जायगी। इसलिये इस प्रकार ठीक समयपर सन्ध्या करनेवाला पूर्वोक्तकी अपेक्षा श्रेष्ठ है। तीसरी बात यह है कि तीनों कालकी अथवा दो कालकी सन्ध्या

नियमपूर्वक और समयपर तो हो ही, साथ ही प्रेमपूर्वक एवं आदरभावसे हो तो और भी उत्तम है। किसी कार्यमें प्रेम और आदरबुद्धि होनेसे वह अपने-आप ठीक समयपर और नियमपूर्वक होने लगेगा। जो लोग इस प्रकार इन तीनों बातोंका ध्यान रखते हुए श्रद्धा-प्रेमपूर्वक भगवान् सूर्यनारायणकी जीवनभर उपासना करेंगे, उनकी मुक्ति निश्चित है।

महाभारतके आदिपर्वमें जरत्कारु ऋषिकी कथा आती है। वे बड़े भारी तपस्वी और मनस्वी थे। उन्होंने सर्पराज वासुकिकी बहिन अपने ही नामकी नागकन्यासे विवाह किया। विवाहके समय उन्होंने उस कन्यासे यह शर्त की थी कि यदि तुम मेरा कोई भी अप्रिय कार्य करोगी तो मैं उसी क्षण तुम्हारा परित्याग कर दूँगा। एक बारकी बात है, ऋषि अपनी धर्मपत्नीकी गोदमें सिर रखे लेटे हुए थे कि उनकी आँख लग गयी। देखते-देखते सूर्यास्तका समय हो आया। किन्तु ऋषि जागे नहीं, वे निद्रामें थे। ऋषिपत्नीने सोचा कि ऋषिकी सायंसन्ध्याका समय हो गया; यदि इन्हें जगाती हूँ तो ये नाराज होकर मेरा परित्याग कर देंगे और यदि नहीं जगाती हूँ तो सन्ध्याकी वेला टल जाती है और ऋषिके धर्मका लोप होता है। धर्मप्राणा ऋषिपत्नीने अन्तमें यही निर्णय किया कि पतिदेव मेरा परित्याग चाहे भले ही कर दें, परन्तु उनके धर्मकी रक्षा मुझे अवश्य करनी चाहिये। यही सोचकर उसने पतिको जगा दिया। ऋषिने अपनी इच्छाके विरुद्ध जगाये जानेपर रोष प्रकट किया और अपनी पूर्व प्रतिज्ञाका स्मरण दिलाकर पत्नीको छोड़ देनेपर उतारू हो गये। जगानेका कारण बतानेपर ऋषिने कहा कि 'हे मुग्धे! तुमने इतने दिन मेरे साथ रहकर भी मेरे प्रभावको नहीं जाना। मैंने आजतक कभी सन्ध्याकी वेलाका अतिक्रमण नहीं किया। फिर क्या आज सूर्यभगवान् मेरा अर्घ्य लिये बिना ही अस्त हो सकते थे? कभी नहीं।

शक्तिरस्ति न वामोरु मयि सुप्ते विभावसोः॥
अस्तं गन्तुं यथाकालमिति मे हृदि वर्तते।*

(महा०, आदि० ४७। २५-२६)

* 'हे सुन्दरि! सूर्यमें इतनी शक्ति नहीं है कि मैं सोता रहूँ और वे नियत समयपर

सत्य है, जिस भक्तकी उपासनामें इतनी दृढ़ निष्ठा होती है, सूर्यभगवान् उसकी इच्छाके विरुद्ध कोई कार्य कर नहीं सकते। इसीलिये भक्तोंके लिये भगवान्‌को अपने नियम भी तोड़ने पड़ते हैं।

अन्तमें हम गायत्रीके सम्बन्धमें कुछ निवेदन कर अपने लेखको समाप्त करते हैं। सन्ध्याका प्रधान अंग गायत्री-जप ही है। गायत्रीको हमारे शास्त्रोंमें वेदमाता कहा गया है। गायत्रीकी महिमा चारों ही वेद गाते हैं। जो फल चारों वेदोंके अध्ययनसे होता है, वह एकमात्र व्याहृतिपूर्वक गायत्रीमन्त्रके जपसे हो सकता है[1]। इसीलिये गायत्री जपकी शास्त्रोंमें बड़ी महिमा गायी गयी है। भगवान् मनु कहते हैं कि 'जो पुरुष प्रतिदिन आलस्यका त्याग करके तीन वर्षतक गायत्रीका जप करता है, वह मृत्युके बाद वायुरूप होता है और उसके बाद आकाशकी तरह व्यापक होकर परब्रह्मको प्राप्त करता है।'[2]

जप तीन प्रकारका कहा गया है—(१) वाचिक, (२) उपांशु एवं (३) मानसिक। एककी अपेक्षा दूसरेको उत्तरोत्तर अधिक लाभदायक माना गया है अर्थात् वाचिककी अपेक्षा उपांशु और उपांशुकी अपेक्षा मानसिक जप अधिक लाभदायक है।[3] जप जितना अधिक हो, उतना ही विशेष लाभदायक होता है।

[मुझसे अर्घ्य लिये बिना ही] अस्त हो जायँ। मेरे हृदयमें ऐसा दृढ़ विश्वास है।'

१. एतदक्षरमेतां च जपन् व्याहृतिपूर्विकाम् । सन्ध्ययोर्वेदविद् विप्रो वेदपुण्येन युज्यते॥
(मनुस्मृति २। ७८)

२. योऽधीतेऽहन्यहन्येतास्त्रीणि वर्षाण्यतन्द्रितः। स ब्रह्म परमभ्येति वायुभूतः खमूर्तिमान्॥
(मनुस्मृति २। ८२)

३. .... । त्रिविधो जपयज्ञः स्यात्तस्य भेदं निबोधत॥
वाचिकश्च उपांशुश्च मानसस्त्रिविधः स्मृतः। त्रयाणां जपयज्ञानां श्रेयः स्यादुत्तरोत्तरम्॥
यदुच्चनीचस्वरितैः स्पष्टशब्दवदक्षरैः। शब्दमुच्चारयेद् वाचा जपयज्ञः स वाचिकः॥
शनैरुच्चारयेन्मन्त्रं ईषदोष्ठौ प्रचालयेत्। किञ्चिन्मन्त्रं स्वयं विद्यादुपांशुः स जपः स्मृतः॥
धिया यदक्षरश्रेण्या वर्णाद् वर्णं पदात् पदम्। शब्दार्थचिन्तनं ध्यानं तदुक्तं मानसं जपः॥
सहस्रपरमां देवीं शतमध्यां दशावराम्। गायत्रीं यो जपेन्नित्यं न स पापैर्हि लिप्यते॥
(नरसिंहपुराण ५८। ७८—८२, ८६)

अर्थात् जपयज्ञ तीन प्रकारका होता है, उसका भेद आप लोग सुनें—वाचिक, उपांशु

महाभारत, शान्तिपर्व (मोक्षधर्मपर्व)-के १९९ वें तथा २०० वें अध्यायोंमें गायत्रीकी महिमाका एक बड़ा सुन्दर उपाख्यान मिलता है। कौशिक गोत्रमें उत्पन्न हुआ पिप्पलादका पुत्र एक बड़ा तपस्वी धर्मनिष्ठ ब्राह्मण था। वह गायत्रीका जप किया करता था। लगातार एक हजार वर्षतक गायत्रीका जप कर चुकनेपर सावित्रीदेवीने उसको साक्षात् दर्शन देकर कहा कि मैं तुझपर प्रसन्न हूँ। परन्तु उस समय पिप्पलादका पुत्र जप कर रहा था। वह चुपचाप जप करनेमें लगा रहा और सावित्रीदेवीको कुछ भी उत्तर नहीं दिया। वेदमाता सावित्रीदेवी उसकी इस जपनिष्ठापर और भी अधिक प्रसन्न हुईं और उसके जपकी प्रशंसा करती वहीं खड़ी रहीं। जिनकी साधनमें ऐसी दृढ़ निष्ठा होती है कि साध्य चाहे भले ही छूट जाय परन्तु साधन नहीं छूटना चाहिये, उनसे साधन तो छूटता ही नहीं, साध्य भी श्रद्धा और प्रेमके कारण उनके पीछे-पीछे उनके इशारेपर नाचता रहता है। साधननिष्ठाकी ऐसी महिमा है। जपकी संख्या पूरी होनेपर वह धर्मात्मा ब्राह्मण खड़ा हुआ और देवीके चरणोंमें गिरकर उनसे यह प्रार्थना करने लगा कि 'यदि आप मुझपर प्रसन्न हैं तो कृपा करके मुझे यह वरदान दीजिये कि मेरा मन निरन्तर जपमें लगा रहे और जप करनेकी मेरी इच्छा उत्तरोत्तर बढ़ती रहे। भगवती उस ब्राह्मणके निष्कामभावको देखकर बड़ी प्रसन्न हुईं और 'तथास्तु' कहकर अन्तर्धान हो गयीं।

और मानस —यही तीन प्रकारका जप कहा गया है। इन तीनों जपयज्ञोंमें उत्तरोत्तर श्रेष्ठ है (अर्थात् वाचिक जपकी अपेक्षा उपांशु और उसकी अपेक्षा मानस जप श्रेष्ठ है)। जप करनेवाला पुरुष आवश्यकतानुसार ऊँचे-नीचे और समान स्वरोंमें बोले जानेवाले स्पष्ट शब्दयुक्त अक्षरोंद्वारा जो वाणीसे सुस्पष्ट शब्दोच्चारण करता है, वह वाचिक जप कहलाता है। इसी प्रकार जिस जपमें मन्त्रका उच्चारण बहुत धीरे-धीरे किया जाय, होंठ कुछ-कुछ हिलते रहें और मन्त्रका शब्द कुछ-कुछ स्वयं सुने (दूसरा नहीं सुने) वह जप उपांशु कहलाता है। बुद्धिके द्वारा मन्त्राक्षरसमूहके प्रत्येक वर्ण, प्रत्येक पद और शब्दार्थका जो चिन्तन एवं ध्यान किया जाता है, वह 'मानस' जप कहलाता है। अधिक-से-अधिक एक हजार, साधारणतया एक सौ अथवा कम-से-कम दस बार जो द्विज गायत्रीका जप करता है वह पापोंसे लिप्त नहीं होता।

ब्राह्मणने फिर जप प्रारम्भ कर दिया। देवताओंके सौ वर्ष और बीत गये। पुरश्चरणके समाप्त हो जानेपर साक्षात् धर्मने प्रसन्न होकर उस ब्राह्मणको दर्शन दिये और स्वर्गादि लोक माँगनेको कहा। परन्तु ब्राह्मणने धर्मको भी यही उत्तर दिया कि 'मुझे सनातन लोकोंसे क्या प्रयोजन है, मैं तो गायत्रीका जप करके आनन्द करूँगा।' इतनेमें ही काल (आयुका परिमाण करनेवाला देवता), मृत्यु (प्राणोंका वियोग करनेवाला देवता) और यम (पुण्य-पापका फल देनेवाला देवता) भी उसकी तपस्याके प्रभावसे वहाँ आ पहुँचे। यम और कालने भी उसकी तपस्याकी बड़ी प्रशंसा की। उसी समय तीर्थयात्राके निमित्त निकले हुए राजा इक्ष्वाकु भी वहाँ आ पहुँचे। राजाने उस तपस्वी ब्राह्मणको बहुत-सा धन देना चाहा; परन्तु ब्राह्मणने कहा कि 'मैंने तो प्रवृत्ति-धर्मको त्यागकर निवृत्ति-धर्म अंगीकार किया है, अतः मुझे धनकी कोई आवश्यकता नहीं है। तुम्हीं कुछ चाहो तो मुझसे माँग सकते हो। मैं अपनी तपस्याके द्वारा तुम्हारा कौन-सा कार्य सिद्ध करूँ?' राजाने उस तपस्वी मुनिसे उसके जपका फल माँग लिया। तपस्वी ब्राह्मण अपने जपका पूरा फल राजाको देनेके लिये तैयार हो गया, किन्तु राजा उसे स्वीकार करनेमें हिचकिचाने लगे। बड़ी देरतक दोनोंमें वाद-विवाद चलता रहा। ब्राह्मण सत्यकी दुहाई देकर राजाकी माँगी हुई वस्तु स्वीकार करनेके लिये आग्रह करता था और राजा क्षत्रियत्वकी दुहाई देकर उसे लेनेमें धर्मकी हानि बतलाते थे। अन्तमें दोनोंमें यह समझौता हुआ कि ब्राह्मणके जपके फलको राजा ग्रहण कर लें और बदलेमें राजाके पुण्यफलको ब्राह्मण स्वीकार कर ले। उनके इस निश्चयको जानकर विष्णु आदि देवता वहाँ उपस्थित हुए और दोनोंके कार्यकी सराहना करने लगे, आकाशसे पुष्पोंकी वर्षा होने लगी। अन्तमें ब्राह्मण और राजा दोनों योगके द्वारा समाधिमें स्थित हो गये। उस समय ब्राह्मणके ब्रह्मरन्ध्रमेंसे एक बड़ा भारी तेजका पुंज निकला तथा सबके देखते-देखते स्वर्गकी ओर चला गया और वहाँसे ब्रह्मलोकमें प्रवेश कर गया। ब्रह्माने उस तेजका स्वागत किया और कहा कि अहा! जो

फल योगियोंको मिलता है, वही जप करनेवालोंको भी मिलता है। इसके बाद ब्रह्माने उस तेजको नित्य आत्मा और ब्रह्मकी एकताका उपदेश दिया, तब उस तेजने ब्रह्माके मुखमें प्रवेश किया और राजाने भी ब्राह्मणकी भाँति ब्रह्माके शरीरमें प्रवेश किया। इस प्रकार शास्त्रोंमें गायत्री-जपका महान् फल बतलाया गया है। अतः कल्याणकामियोंको चाहिये कि वे इस स्वल्प आयाससे साध्य होनेवाले सन्ध्या और गायत्रीरूप साधनके द्वारा शीघ्र-से-शीघ्र मुक्ति लाभ करें।

एक निवेदन

सर्वसाधारणसे नम्रतापूर्वक निवेदन किया जाता है कि यदि उचित समझा जाय, तो प्रत्येक मनुष्य प्रतिदिन परमात्माके और अपनेसे बड़े जितने लोग घरमें हों, उन सबके चरणोंमें प्रणाम करे, हो सके तो बिछौनेसे उठते ही कर ले, नहीं तो स्नान-पूजादिके बाद करे। गुरु, माता, पिता, ताऊ, चाचा, बड़े भाई, ताई, काकी, भौजाई आदि वय, पद और सम्बन्धके भेदसे सभी गुरुजन हैं।

स्त्री अपने पतिके तथा घरमें अपनेसे सब बड़ी स्त्रियोंके चरणोंमें प्रणाम करे। बड़े पुरुषोंको दूरसे प्रणाम करे, घरमें कोई बड़ा न हो तो स्त्री-पुरुष सभी परमात्माको ही प्रणाम करें।

इससे धर्मकी वृद्धि होगी, आत्मकल्याणमें बड़ी सहायता मिलेगी, परमेश्वर प्रसन्न होंगे। इस सूचनाके मिलते ही जो लोग इसके अनुसार कार्य आरम्भ कर देंगे, उनकी बड़ी कृपा होगी।*

---

* जिस देशमें गुरुजनोंकी सेवा-शुश्रूषा करना और उनका सम्मान-अभिवादन करना एक साधारण धर्म था, उस देशके निवासियोंको गुरुजनवन्दनका महत्त्व बतलाना एक प्रकारसे उनका अपमान करना है, परन्तु दुःखके साथ कहना पड़ता है कि समय कुछ ऐसा ही आ गया है। आज पुत्र अपने पिता-माताकी चरण-वन्दना करनेमें सकुचाता है। शिष्य गुरुके सामने मस्तक झुकानेमें झिझकता है। पुत्रवधू सासके पग लगनेमें अपनी शानमें बाधा समझती है। फलस्वरूप उच्छृंखलता बढ़ रही है। कोई

ब्रह्मचर्य

ब्रह्मचर्यका यौगिक अर्थ है—ब्रह्मकी प्राप्तिके लिये वेदोंका अध्ययन करना। प्राचीन-कालमें छात्रगण ब्रह्मकी प्राप्तिके लिये गुरुके यहाँ रहकर सावधानीके साथ वीर्यकी रक्षा करते हुए वेदाध्ययन करते थे। इसलिये धीरे-धीरे 'ब्रह्मचर्य' शब्द वीर्यरक्षाके अर्थमें रूढ़ हो गया। आज हमें इसी वीर्यरक्षाके सम्बन्धमें कुछ विचार करना है। वीर्यरक्षा ही जीवन है और वीर्यका नाश ही मृत्यु है। वीर्यरक्षाके प्रभावसे ही प्राचीन कालके लोग दीर्घजीवी, नीरोग, हृष्ट-पुष्ट, बलवान्, बुद्धिमान्, तेजस्वी, शूरवीर और दृढ़संकल्प होते थे। वीर्यरक्षाके कारण ही वे

किसीकी बातका आदर करनेको तैयार नहीं। यदि भारतमें ऐसी ही दशा बढ़ती रही तो इसका आदर्श ही प्राय: नष्ट हो जायगा। ऐसे अवसरमें इस प्रकारकी सलाह देनेकी बड़ी आवश्यकता है। लोगोंको चाहिये कि वे श्रीजयदयालजीके उपर्युक्त शब्दोंपर ध्यान देकर इस सुन्दर प्रथाको तुरन्त जारी कर दें। इससे बड़े लाभकी सम्भावना है।

मनुजी महाराज भी कहते हैं—

अभिवादनशीलस्य नित्यं वृद्धोपसेविन:। चत्वारि तस्य वर्धन्ते आयुर्विद्या यशो बलम्॥ (२। १२१)

तात्पर्य यह कि जो मनुष्य नित्य वृद्धोंको प्रणाम करता और उनकी सेवा करता है उसकी आयु, विद्या, यश और बल बढ़ता है।

चरणोंमें प्रणाम करनेपर स्वाभाविक ही प्रणाम करनेवालेके प्रति स्नेह बढ़ता है। कई बार तो हृदय बलात् आशीर्वाद देना चाहता है। यद्यपि आशीर्वाद न देना ही उत्तम पक्ष है। आशीर्वादकी जगह भगवन्नाम उच्चारण कर लेना चाहिये। प्रत्येक बालक, युवा, प्रौढ़, वृद्धको चाहिये कि वह अपनेसे बड़े जितने लोग घरमें हों, नित्य उनके चरणोंमें प्रणाम करे। समान उम्रकी भाभी या काकीके चरण-स्पर्श न करे, दूरसे प्रणाम कर ले। सबमें पवित्र और पूज्यभाव रखे। स्त्रियोंको चाहिये कि वे अपने पतिके सिवा अन्य किसी पुरुषका चरण-स्पर्श न करें, चाहे वह कोई भी हो। आजकलका समय बहुत खराब है। अन्य बड़े पुरुषोंको दूरसे प्रणाम कर ले।

कोई भी बड़ा घरमें न हो तो परमात्माके चरण-कमलोंमें तो अवश्य प्रणाम कर ले। वन्दन भी नवधा भक्तिमेंसे एक भक्ति है। भगवान्‌की किसी मूर्तिको अथवा चराचरमें व्याप्त विश्वरूप भगवान्‌को मन-ही-मन प्रणाम कर लेना चाहिये। —सम्पादक

शीत, आतप, वर्षा आदिको सहकर नाना प्रकारके तप करनेमें समर्थ होते थे। ब्रह्मचर्यके बलसे ही वे प्राणवायुको रोककर शरीर और मनकी शुद्धिके द्वारा नाना प्रकारके योग-साधनोंमें सफलता प्राप्त करते थे। ब्रह्मचर्यके बलसे ही वे थोड़े ही समयमें नाना प्रकारकी विद्याओंको सीखकर अपने ज्ञानके द्वारा अपना और जगत्‌का लौकिक एवं पारमार्थिक— दोनों प्रकारका कल्याण करनेमें समर्थ होते थे। शरीरमें सार वस्तु वीर्य ही है। इसीके नाशसे आज हमारा देश रसातलको पहुँच गया है। ब्रह्मचर्यके नाशके कारण ही आज हमलोग नाना प्रकारकी बीमारियोंके शिकार हो रहे हैं, थोड़ी ही अवस्थामें कालके गालमें जा रहे हैं। इसीके कारण आज हमलोग अपने बल, तेज, वीरता और आत्मसम्मानको खोकर पराधीनताकी बेड़ीमें जकड़े हुए हैं और जो हमारा देश किसी समय विश्वका सिरमौर और सभ्यताका उद्‌गम-स्थान बना हुआ था, वही आज दूसरोंके द्वारा लांछित और पददलित हो रहा है। विद्या-बुद्धि, बल-वीर्य, कला-कौशल—सबमें आज हम पिछड़े हुए हैं। इसीके कारण आज हम चरित्रसे भी गिर गये हैं। सारांश यह है कि किसी भी बातको लेकर आज हम संसारके सामने अपना मस्तक ऊँचा नहीं कर सकते। वीर्यका नाश ही हमारी इस गिरी हुई दशाका प्रधान कारण मालूम होता है। वीर्यके नाशसे शरीर, बल, तेज, बुद्धि, धन, मान, लोक-परलोक—सबकी हानि होती है। परमात्माकी प्राप्ति तो वीर्यकी रक्षा न करनेवालेसे कोसों दूर रहती है।

ब्रह्मचर्यके बिना कोई भी कार्य सिद्ध नहीं होता। रोगसे मुक्त होनेके लिये, स्वास्थ्य-लाभके लिये, बल-बुद्धिके विकासके लिये, विद्याभ्यासके लिये तथा योगाभ्यासके लिये तो ब्रह्मचर्यकी बड़ी भारी आवश्यकता है। उत्तम संतानकी प्राप्ति, स्वर्गकी प्राप्ति, सिद्धियोंकी प्राप्ति, अन्तःकरणकी शुद्धि तथा परमात्माकी प्राप्ति—ब्रह्मचर्यसे सब कुछ सम्भव है और ब्रह्मचर्यके बिना कुछ भी नहीं हो सकता। सांख्ययोग, ज्ञानयोग, भक्तियोग, राजयोग, हठयोग—सभी साधनोंमें ब्रह्मचर्यकी आवश्यकता होती है। अतः लोक-परलोकमें अपना हित चाहनेवालेको बड़ी सावधानी एवं तत्परताके साथ वीर्यरक्षाके लिये चेष्टा करनी चाहिये।

सब प्रकारके मैथुनके त्यागका नाम ही ब्रह्मचर्य है। मैथुनके निम्नलिखित प्रकार शास्त्रोंमें कहे गये हैं—

(१) ***स्मरण***—किसी सुन्दर युवती स्त्रीके रूप-लावण्य अथवा हाव, भाव, कटाक्ष एवं शृंगारका स्मरण करना, कुत्सित पुरुषोंकी कुत्सित क्रियाओंका स्मरण करना, अपने द्वारा पूर्वमें घटी हुई मैथुन आदि क्रियाका स्मरण करना, भविष्यमें किसी स्त्रीके साथ मैथुन करनेका संकल्प अथवा भावना करना, माला, चन्दन, इत्र, फुलेल लवेंडर आदि कामोद्दीपक एवं शृंगारके पदार्थोंका स्मरण करना, पूर्वमें देखे हुए किसी सुन्दर स्त्री अथवा बालकके चित्रका अथवा अश्लील चित्रका स्मरण करना—ये सभी मानसिक मैथुनके अन्तर्गत हैं। इनसे वीर्यका प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्षरूपमें नाश होता है और मनपर तो बुरा प्रभाव पड़ता ही है। मन खराब होनेसे आगे चलकर वैसी क्रिया भी घट सकती है। इसलिये सर्वांगमें ब्रह्मचर्यका पालन करनेवालेको चाहिये कि वह उक्त सभी प्रकारके मानसिक मैथुनका त्याग कर दे, जिससे मनमें कामोद्दीपन हो ऐसा कोई संकल्प ही न करे और यदि हो जाय तो उसका तत्काल विवेक एवं विचारके द्वारा त्याग कर दे।

(२) ***श्रवण***—गंदे तथा कामोद्दीपक एवं शृंगार-रसके गानोंको सुनना, शृंगार-रसका गद्य-पद्यात्मक वर्णन सुनना, स्त्रियोंके रूप-लावण्य तथा अंगोंका वर्णन सुनना, उनके हाव-भाव, कटाक्षका वर्णन सुनना, कामविषयक बातें सुनना आदि—ये सभी श्रवणरूप मैथुनके अन्तर्गत हैं। ब्रह्मचारीको चाहिये कि वह उक्त सभी प्रकारके श्रवणका त्याग कर दे।

(३) ***कीर्तन***—अश्लील बातोंका कथन, शृंगार-रसका वर्णन, स्त्रियोंके रूप-लावण्य, यौवन एवं शृंगारकी प्रशंसा तथा उनके हाव-भाव, कटाक्ष आदिका वर्णन, विलासिताका वर्णन, कामोद्दीपक अथवा गंदे गीत गाना तथा ऐसे साहित्यको स्वयं पढ़ना और दूसरोंको सुनाना तथा कथा आदिमें ऐसे प्रसंगोंको विस्तारके साथ कहना—ये सभी कीर्तनरूप मैथुनके अन्तर्गत हैं। ब्रह्मचारीको चाहिये कि वह इन सबका त्याग कर दे।

(४) ***प्रेक्षण***—स्त्रियोंके रूप-लावण्य, शृंगार तथा उनके अंगोंकी रचनाको देखना, किसी सुन्दरी स्त्री अथवा सुन्दर बालकके रूप या

चित्रको देखना, नाटक-सिनेमा देखना, कामोद्दीपक वस्तुओं तथा सजावटके सामानको देखना, दर्पण आदिमें अपना रूप तथा श्रृंगार देखना—यह सभी प्रेक्षणरूप मैथुनके अन्तर्गत हैं। ब्रह्मचारीको चाहिये कि वह जान-बूझकर तो इन वस्तुओंको देखे ही नहीं; यदि भूलसे इनपर दृष्टि पड़ जाय तो इन्हें स्वप्नवत्, मायामय, नाशवान् एवं दुःखरूप समझकर तुरंत इनपरसे दृष्टि हटा ले, दृष्टिको इनपर ठहरने न दे।

(५) **केलि**—स्त्रियोंके साथ हँसी-मजाक करना, नाचना गाना, आमोद-प्रमोदके लिये क्लब वगैरहमें जाना, जल-विहार करना, फाग खेलना, गंदी चेष्टाएँ करना, स्त्रीसंग करना आदि—ये सभी केलिरूप मैथुनके अन्तर्गत हैं। ब्रह्मचारीको इन सबका सर्वथा त्याग कर देना चाहिये।

(६) ***श्रृंगार***—अपनेको सुन्दर दिखलानेके लिये बाल सँवारना, कंघी करना, काकुल रखना, शरीरको वस्त्राभूषणादिसे सजाना, इत्र, फुलेल, लवेंडर अदिका व्यवहार करना, फूलोंकी माला धारण करना, अंगराग लगाना, सुरमा लगाना, उबटन करना, साबुन-तेल लगाना, पाउडर लगाना, दाँतोंमें मिस्सी लगाना, दाँतोंमें सोना जड़वाना, शौकके लिये बिना आवश्यकताके चश्मा लगाना, होठ लाल करनेके लिये पान खाना—यह सभी श्रृंगारके अन्तर्गत है। दूसरोंके चित्तको आकर्षित करनेके उद्देश्यसे किया हुआ यह सभी श्रृंगार कामोद्दीपक, अतएव मैथुनका अंग होनेके कारण ब्रह्मचारीके लिये सर्वथा त्याज्य है। कुमारी कन्याओं, बालकों, विधवाओं, संन्यासियों एवं वानप्रस्थोंको तो उक्त सभी प्रकारके श्रृंगारसे सर्वथा बचना चाहिये। विवाहित स्त्री-पुरुषोंको भी ऋतुकालमें सहवासके समयके अतिरिक्त और समयमें इन सभी श्रृंगारोंसे यथासम्भव बचना चाहिये।

(७) ***गुह्यभाषण***—स्त्रियोंके साथ एकान्तमें अश्लील बातें करना, उनके रूप-लावण्य, यौवन एवं श्रृंगारकी प्रशंसा करना, हँसी-मजाक करना—यह सभी गुह्यभाषणरूप मैथुनके अन्तर्गत है, अतएव ब्रह्मचारीके लिये सर्वथा त्याज्य है।

(८) ***स्पर्श***—कामबुद्धिसे किसी स्त्री अथवा बालकका स्पर्श करना, चुम्बन करना, आलिंगन करना, कामोद्दीपक पदार्थोंका स्पर्श

करना आदि—यह सभी स्पर्शरूप मैथुनके अन्तर्गत है, अतएव ब्रह्मचर्यव्रतका पालन करनेवालेके लिये त्याज्य है।

उपर्युक्त बातें पुरुषोंको लक्ष्यमें रखकर ही कही गयी हैं। स्त्रियोंको भी पुरुषोंके सम्बन्धमें यही बात समझनी चाहिये। पुरुषोंको पर-स्त्रीके साथ और स्त्रियोंको पर-पुरुषके साथ तो इन आठों प्रकारके मैथुनोंका त्याग हर हालतमें करना ही चाहिये, ऐसा न करनेवाले महान् पापके भागी होते हैं और इस लोकमें तथा परलोकमें महान् दुःख भोगते हैं। गृहस्थोंको अपनी विवाहिता पत्नीके साथ भी ऋतुकालकी अनिन्दित रात्रियोंको छोड़कर शेष समयमें उक्त आठों प्रकारके मैथुनोंसे बचना चाहिये। ऐसा करनेवाले गृहस्थ होते हुए भी ब्रह्मचारी हैं। बाकी तीन आश्रमवालों तथा विधवा स्त्रियोंके लिये तो सभी अवस्थाओंमें उक्त आठों प्रकारके मैथुनोंका त्याग सर्वथा अनिवार्य है।

परमात्मप्राप्तिके उद्देश्यसे किये गये उपर्युक्त ब्रह्मचर्यके पालनमात्रसे मनुष्यका कल्याण हो सकता है, यह बात भगवान् श्रीकृष्णने गीताके ८वें अध्यायके ११वें श्लोकमें कही है। भगवान् कहते हैं—

यदक्षरं वेदविदो वदन्ति
विशन्ति यद्यतयो वीतरागाः।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति
तत्ते पदं संग्रहेण प्रवक्ष्ये॥

'वेदके जाननेवाले विद्वान् जिस सच्चिदानन्दघनरूप परमपदको अविनाशी कहते हैं, आसक्तिरहित यत्नशील संन्यासी महात्माजन जिसमें प्रवेश करते हैं और जिस परमपदको चाहनेवाले ब्रह्मचारीलोग ब्रह्मचर्यका आचरण करते हैं, उस परमपदको मैं तेरे लिये संक्षेपमें कहूँगा।'

कठोपनिषद्में भी इस श्लोकसे मिलता-जुलता मन्त्र आया है—

सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति
तपाꣳसि सर्वाणि च यद्वदन्ति।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति
तत्ते पदꣳसंग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत्॥

(१।२।१५)

'सारे वेद जिस पदका वर्णन करते हैं, समस्त तपोंको जिसकी प्राप्तिका साधन बतलाते हैं तथा जिसकी इच्छा रखनेवाले ब्रह्मचारी ब्रह्मचर्यका पालन करते हैं, उस पदको मैं तुम्हें संक्षेपसे बताता हूँ— 'ओम्' यही वह पद है।'

उक्त दोनों ही मन्त्रोंमें परमपदकी इच्छासे ब्रह्मचर्यके पालनकी बात आयी है, इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि परमात्माकी प्राप्ति उद्देश्यसे किये गये ब्रह्मचर्यके पालनमात्रसे मनुष्यका कल्याण हो सकता है। क्षत्रियकुल-चूडामणि वीरवर भीष्मकी जो इतनी महिमा है, वह उनके अखण्ड ब्रह्मचर्य-व्रतको लेकर ही है। इसीके कारण उनका 'भीष्म' नाम पड़ा और इसीके प्रतापसे उन्हें अपने पिता शान्तनुसे इच्छामृत्युका वरदान मिला, जिसके कारण वे संसारमें अजेय हो गये। यही कारण था कि वे सहस्रबाहु-जैसे अप्रतिम योद्धाकी भुजाओंका छेदन करनेवाले तथा इक्कीस बार पृथ्वीको निःक्षत्रिय कर देनेवाले महाप्रतापी परशुरामसे भी नहीं हारे। इतना ही नहीं, परात्पर भगवान् श्रीकृष्णको भी इनके कारण महाभारतयुद्धमें शस्त्र ग्रहण करना पड़ा। उनकी यह सब महिमा ब्रह्मचर्यके ही कारण थी। वे भगवान्के अनन्य भक्त, आदर्श पितृभक्त तथा महान् ज्ञानी एवं शास्त्रोंके ज्ञाता भी थे; परन्तु उनकी महिमाका प्रधान कारण उनका आदर्श ब्रह्मचर्य ही था। इसीके कारण वे अपने अस्त्रविद्याके गुरु भगवान् परशुरामके कोपभाजन हुए, परन्तु विवाह न करनेका अपना हठ नहीं छोड़ा। धन्य ब्रह्मचर्य! भक्तश्रेष्ठ हनुमान्, सनकादि मुनीश्वर, महामुनि शुकदेव तथा बालखिल्यादि ऋषि भी अपने ब्रह्मचर्यके लिये प्रसिद्ध हैं।

ब्रह्मचर्यकी रक्षासे लाभ और उसके नाशसे हानियाँ

ब्रह्मचर्यकी रक्षासे शरीरमें बल, तेज, उत्साह एवं ओजकी वृद्धि होती है; शीत, उष्ण, पीड़ा आदि सहन करनेकी शक्ति आती है, अधिक परिश्रम करनेपर भी थकावट कम आती है, प्राणवायुको रोकनेकी शक्ति आती है, शरीरमें फुर्ती एवं चेतनता रहती है, आलस्य तथा तन्द्रा कम आती है, बीमारियोंके आक्रमणको रोकनेकी शक्ति

आती है, मन प्रसन्न रहता है, कार्य करनेकी क्षमता प्रचुर मात्रामें रहती है, दूसरेके मनपर प्रभाव डालनेकी शक्ति आती है, संतान दीर्घायु, बलिष्ठ एवं स्वस्थ होती है, इन्द्रियाँ सबल रहती हैं, शरीरके अंग-प्रत्यंग सुदृढ़ रहते हैं, आयु बढ़ती है, वृद्धावस्था जल्दी नहीं आती, शरीर स्वस्थ एवं हलका रहता है, स्मरणशक्ति बढ़ती है, बुद्धि तीव्र होती है, मन बलवान् होता है, कायरता नहीं आती, कर्तव्यकर्म करनेमें अनुत्साह नहीं होता, बड़ी-से-बड़ी विपत्ति आनेपर भी धैर्य नहीं छूटता, कठिनाइयों एवं विघ्न-बाधाओंका वीरतापूर्वक सामना करनेकी शक्ति आती है, धर्मपर दृढ़ आस्था होती है, अन्तःकरण शुद्ध रहता है, आत्मसम्मानका भाव बढ़ता है, दुर्बलोंको सतानेकी प्रवृत्ति कम होती है, क्रोध, ईर्ष्या, द्वेष आदिके भाव कम होते हैं, क्षमाका भाव बढ़ता है, दूसरोंके प्रति सहिष्णुता तथा सहानुभूति बढ़ती है, दूसरोंका कष्ट दूर करने तथा दीन-दुःखियोंकी सेवा करनेका भाव बढ़ता है, सत्त्वगुणकी वृद्धि होती है, वीर्यमें अमोघता आती है, पर-स्त्रीके प्रति मातृभाव जाग्रत् होता है, नास्तिकता तथा निराशाके भाव कम होते हैं; असफलतामें भी विषाद नहीं होता, सबके प्रति प्रेम एवं सद्भाव रहता है तथा सबसे बढ़कर भगवत्प्राप्तिकी योग्यता आती है, जो मनुष्य-जीवनका चरम फल है, जिसके लिये यह मनुष्यदेह हमें मिला है।

इसके विपरीत ब्रह्मचर्यके नाशसे मनुष्य नाना प्रकारकी बीमारियोंका शिकार हो जाता है, शरीर खोखला हो जाता है, थोड़ा-सा भी परिश्रम अथवा कष्ट सहन नहीं होता; शीत, उष्ण आदिका प्रभाव शरीरपर बहुत जल्दी होता है, स्मरणशक्ति कमजोर हो जाती है, संतान उत्पन्न करनेकी शक्ति नष्ट हो जाती है, संतान होती भी है तो दुर्बल एवं अल्पायु होती है, मन अत्यन्त दुर्बल हो जाता है, संकल्पशक्ति कमजोर हो जाती है, स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाता है, प्रतिकूलता जरा भी सहन नहीं होती, आत्मविश्वास कम हो जाता है, काम करनेमें उत्साह नहीं रहता, शरीरमें आलस्य छाया रहता है, चित्त सदा सशंकित रहता है, मनमें विषाद छाया रहता है, कोई भी नया काम हाथमें लेनेमें भय

मालूम होता है, थोड़े-से भी मानसिक परिश्रमसे दिमागमें थकान आ जाती है, बुद्धि मन्द हो जाती है, अधिक सोचनेकी शक्ति नहीं रहती, असमयमें ही वृद्धावस्था आ घेरती है और थोड़ी ही अवस्थामें मनुष्य कालके गालमें चला जाता है, चित्त स्थिर नहीं हो पाता, मन और इन्द्रियाँ वशमें नहीं हो पातीं और मनुष्य भगवत्प्राप्तिके मार्गसे कोसों दूर हट जाता है। वह न इस लोकमें सुखी रहता है और न परलोकमें ही। ऐसी अवस्थामें मनुष्यको चाहिये कि बड़ी सावधानीसे वीर्यकी रक्षा करे। वीर्यरक्षा ही जीवन है और वीर्यनाश ही मृत्यु है, इस बातको सदा स्मरण रखे। गृहस्थाश्रममें भी केवल संतानोत्पादनके उद्देश्यसे ऋतुकालमें अधिक-से-अधिक महीनेमें दो बार स्त्रीसंग करे।

ब्रह्मचर्यरक्षाके उपाय

उपर्युक्त प्रकारके मैथुनके त्यागके अतिरिक्त निम्नलिखित साधन भी ब्रह्मचर्यकी रक्षामें सहायक हो सकते हैं—

(१) भोजनमें उत्तेजक पदार्थोंका सर्वथा त्याग कर देना चाहिये। मिर्च, राई, गरम मसाले, अचार, खटाई, अधिक मीठा और अधिक गरम चीजें नहीं खानी चाहिये। भोजन खूब चबाकर करना चाहिये। भोजन सदा सादा, ताजा और नियमित समयपर करना चाहिये। मांस, लहसुन, प्याज आदि अभक्ष्य पदार्थ और मद्य, गाँजा, भाँग आदि अन्य नशीली वस्तुएँ तथा केशर, कस्तूरी एवं मकरध्वज आदि वाजीकरण औषधोंका भी सेवन नहीं करना चाहिये।

(२) यथासाध्य नित्य खुली हवामें सबेरे और सायंकाल पैदल घूमना चाहिये।

(३) रातको जल्दी सोकर सबेरे ब्राह्ममुहूर्तमें अर्थात् पहरभर रात रहे अथवा सूर्योदयसे कम-से-कम घंटेभर पूर्व अवश्य उठ जाना चाहिये। सोते समय पेशाब करके, हाथ-पैर धोकर तथा कुल्ला करके भगवान्‌का स्मरण करते हुए सोना चाहिये।

(४) कुसंगका सर्वथा त्यागकर यथासाध्य सदाचारी, वैराग्यवान्,

भगवद्भक्त सत्पुरुषोंका संग करना चाहिये, जिससे मलिन वासनाएँ नष्ट होकर हृदयमें अच्छे भावोंका संग्रह हो।

(५) पति-पत्नीको छोड़कर अन्य स्त्री-पुरुष अकेलेमें कभी न बैठें और न एकान्तमें बातचीत ही करें।

(६) भगवद्गीता, रामायण, महाभारत, उपनिषद्, श्रीमद्भागवत आदि उत्तम ग्रन्थोंका नित्य नियमपूर्वक स्वाध्याय करना चाहिये। इससे बुद्धि शुद्ध होती है और मनमें गंदे विचार नहीं आते।

(७) ऐश, आराम, भोग, आलस्य, प्रमाद और पापमें समय नहीं बिताना चाहिये। मनको सदा किसी-न-किसी अच्छे काममें लगाये रखना चाहिये।

(८) मूत्रत्यागके और मलत्यागके बाद इन्द्रियोंको ठंढे जलसे धोना चाहिये और मल-मूत्रकी हाजतको भी नहीं रोकना चाहिये।

(९) यथासाध्य ठंढे जलसे नित्य स्नान करना चाहिये।

(१०) नित्य नियमितरूपसे किसी प्रकारका व्यायाम करना चाहिये। हो सके तो नित्यप्रति कुछ आसन एवं प्राणायामका भी अभ्यास करना चाहिये।

(११) लँगोटा या कौपीन रखना चाहिये।

(१२) नित्य नियमितरूपसे कुछ समयतक परमात्माका ध्यान अवश्य करना चाहिये।

(१३) यथाशक्ति भगवान्‌के किसी भी नामका श्रद्धा-प्रेमपूर्वक जप तथा कीर्तन करना चाहिये। कामवासना जाग्रत् हो तो नाम-जपकी धुन लगा देनी चाहिये अथवा जोर-जोरसे कीर्तन करने लगना चाहिये। कामवासना नाम-जप और कीर्तनके सामने कभी ठहर नहीं सकती।

(१४) जगत्‌में वैराग्यकी भावना करनी चाहिये। संसारकी अनित्यताका बार-बार स्मरण करना चाहिये। मृत्युको सदा याद रखना चाहिये।

(१५) पुरुषोंको स्त्रीके शरीरमें और स्त्रियोंको पुरुषके शरीरमें मलिनत्व-बुद्धि करनी चाहिये। ऐसा समझना चाहिये कि जिस आकृतिको हम सुन्दर समझते हैं, वह वास्तवमें चमड़ेमें लपेटा हुआ मांस, अस्थि,

रुधिर, मज्जा, मल, मूत्र, कफ आदि मलिन एवं अपवित्र पदार्थोंका एक घृणित पिण्डमात्र है।

(१६) महीनेमें कम-से-कम दो दिन अर्थात् प्रत्येक एकादशीको उपवास करना चाहिये और अमावास्या तथा पूर्णिमाको केवल एक ही समय अर्थात् दिनमें भोजन करना चाहिये।

(१७) भगवान्की लीलाओं तथा महापुरुषों एवं वीर ब्रह्मचारियोंके चरित्रोंका मनन करना चाहिये।

(१८) यथासाध्य सबमें परमात्मभावना करनी चाहिये।

(१९) नित्य-निरन्तर भगवान्को स्मरण रखनेकी चेष्टा करनी चाहिये।

ऊपर जितने साधन बताये गये हैं, उनमें अन्तिम साधन सबसे उत्तम तथा सबसे अधिक कारगर है। यदि नित्य-निरन्तर अन्तःकरणको भगवद्भावसे भरते रहनेकी चेष्टा की जाय तो मनमें गंदे भाव कभी उत्पन्न हो ही नहीं सकते। किसी कविने क्या ही सुन्दर कहा है—

जहाँ राम तहँ काम नहिं जहाँ काम नहिं राम।
सपनेहुँ कबहुँक रहि सकैं रबि रजनी इक ठाम॥

जिस प्रकार सूर्यके उदय होनेपर रात्रिके घोर अन्धकारका नाश हो जाता है, उसी तरह जिस हृदयमें भगवान् अपना डेरा जमा लेते हैं अर्थात् नित्य-निरन्तर भगवान्का स्मरण होता है, वहाँ कामका उदय भी नहीं हो सकता। भगवद्भक्तिके प्रभावसे हृदयमें विवेक एवं वैराग्यका अपने-आप उदय हो जाता है। पद्मपुराणान्तर्गत श्रीमद्भागवतके माहात्म्यमें ज्ञान और वैराग्यको भक्तिके पुत्ररूपमें वर्णन किया गया है। अतः ब्रह्मचर्यकी रक्षा करनेके लिये नित्य-निरन्तर भगवान्का स्मरण करते रहना चाहिये। भगवत्स्मरणके प्रभावसे अन्तःकरण सर्वथा शुद्ध होकर बहुत शीघ्र भगवान्की प्राप्ति हो जाती है, जो मनुष्य-जीवनका चरम लक्ष्य और ब्रह्मचर्यका अन्तिम फल है। भगवान्ने स्वयं गीताजीमें कहा है—

अनन्यचेताः सततं यो मां स्मरति नित्यशः।
तस्याहं सुलभः पार्थ नित्ययुक्तस्य योगिनः॥ (८।१४)

ब्रह्मचर्यकी आवश्यकता

ब्रह्मचर्यका पालन सभी दृष्टियोंसे परमावश्यक है। ब्रह्मचर्यसे बल, बुद्धि, तेज एवं आयुकी वृद्धि, आरोग्य-लाभ, लोक-परलोकके सुख, शान्ति—यहाँतक कि परमात्माकी प्राप्ति भी, जो जीवनका परम ध्येय एवं जन्म-मृत्युके चक्करसे सदाके लिये छूटनेका एकमात्र उपाय है, सम्भव है। शास्त्रोंने भी ब्रह्मचर्यकी महिमा खूब गायी है। श्रुति कहती है—'**ब्रह्मचर्येण तपसा देवा मृत्युमपाघ्नत**।' 'ब्रह्मचर्य एवं तपके द्वारा ही देवतालोग मृत्युपर भी विजय पा सके हैं।' कठोपनिषद्में ब्रह्मचर्यको परमात्माकी प्राप्तिका साधन बताया गया है—

सर्वे वेदा यत्पदमामनन्ति तपाꣳसि सर्वाणि च यद्वदन्ति।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदꣳसंग्रहेण ब्रवीम्योमित्येतत्॥

(१। २। १५)

'सारे वेद जिस पदका वर्णन करते हैं, सम्पूर्ण तपोंको जिसकी प्राप्तिका साधन बतलाते हैं तथा जिसकी इच्छा रखनेवाले ब्रह्मचारी ब्रह्मचर्यका पालन करते हैं, उस पदको मैं तुम्हें संक्षेपसे बताता हूँ; 'ओम्' यही वह पद है।'

भगवद्गीतामें भी यही मन्त्र कुछ परिवर्तनके साथ इस प्रकार आया है—

यदक्षरं वेदविदो वदन्ति विशन्ति यद्यतयो वीतरागाः।
यदिच्छन्तो ब्रह्मचर्यं चरन्ति तत्ते पदं संग्रहेण प्रवक्ष्ये॥

(८। ११)

'वेदके जाननेवाले विद्वान् जिस सच्चिदानन्दघनरूप परमपदको अविनाशी कहते हैं, आसक्तिरहित यत्नशील संन्यासी महात्माजन जिसमें प्रवेश करते हैं और जिस परमात्माको चाहनेवाले ब्रह्मचारी लोग ब्रह्मचर्यका आचरण करते हैं, उस परमपदको मैं तेरे लिये संक्षेपसे कहूँगा।'

उपर्युक्त दोनों ही मन्त्रोंमें ब्रह्मचर्यको स्पष्ट शब्दोंमें परमात्माकी प्राप्तिका साधन बतलाया गया है। हमारी आदर्श वर्णाश्रम-व्यवस्थामें ब्रह्मकी प्राप्तिको लक्ष्य मानकर ही ब्रह्मचर्य-पालनका विधान किया गया है। सनकादि परमर्षि, देवर्षि नारद, भक्तराज हनुमान्, परमहंस-शिरोमणि श्रीशुकदेवजी तथा वीराग्रगण्य पितामह भीष्म आदि हमारे यहाँके आदर्श ब्रह्मचारी हैं। स्मृतिग्रन्थोंमें भी ब्रह्मचर्यकी बड़ी महिमा कही गयी है।

लौकिक एवं पारमार्थिक—सभी दृष्टियोंसे वीर्यरक्षा परमोपयोगी है। वीर्यरक्षा ही जीवन है और वीर्यका नाश ही मृत्यु है। वीर्यकी रक्षासे लोक-परलोक सब कुछ सध सकता है और वीर्यहीन पुरुष संसारमें कुछ भी नहीं कर सकता। शरीरकी सात धातुओंमें वीर्य ही सर्वोपरि है। वीर्यसे ही शरीर बनता है और वीर्यसे ही उसकी रक्षा होती है। वीर्य ही जीवनका सार है। वीर्यका अपव्यय करनेवाला मनुष्य कभी स्वस्थ एवं सुखी नहीं रह सकता। वह नाना प्रकारके रोगोंका शिकार बनकर अकालमें ही कालका ग्रास बन जाता है। वीर्यकी मात्रा कम हो जानेपर शरीरकी सारी क्रियाएँ अस्त-व्यस्त हो जाती हैं—मस्तिष्क कमजोर हो जाता है, स्मृतिशक्ति क्षीण हो जाती है, स्नायु निर्बल हो जाते हैं, रक्तका संचार कम हो जाता है, इन्द्रियाँ शिथिल हो जाती हैं और शीत-उष्ण आदि द्वन्द्वोंको सहन करनेकी शक्ति कम हो जाती है।

व्यायामके लिये भी ब्रह्मचर्य परमावश्यक है। व्यायामशिक्षक व्यायामके साथ-साथ ब्रह्मचर्य तथा दुग्ध-सेवनपर अधिक जोर देते हैं। ब्रह्मचर्यके बिना तो व्यायाम कभी-कभी हानिकारक हो जाता है, जो लोग ब्रह्मचर्यपर ध्यान न देकर व्यायामको चालू रखते हैं, वे लोग कभी-कभी गठिया आदि भयंकर रोगोंके शिकार होते पाये जाते हैं। स्वास्थ्यरक्षा एवं आरोग्य-लाभके लिये भी ब्रह्मचर्य अनिवार्य है। रोगीके रोग-निवारण तथा शीघ्र आरोग्य-लाभके लिये वैद्यलोग ओषधि-सेवनके साथ-साथ पथ्य-भोजन तथा ब्रह्मचर्य-पालनपर विशेष जोर देते हैं।

योग साधनमें भी ब्रह्मचर्यकी बड़ी आवश्यकता है। अष्टांगयोगका प्रथम अंग पाँच प्रकारके यमोंका पालन है और यमोंमें ब्रह्मचर्यका प्रमुख स्थान है। ब्रह्मचर्यके बिना मनकी एकाग्रता भी सम्भव नहीं है। ब्रह्मचर्यहीन पुरुषको आलस्य एवं विक्षेप अधिक सताते हैं। उसका मन अधिक चंचल होता है। ब्रह्मचर्यके बिना मनुष्यके न तो लौकिक कार्य सुचारुरूपसे सिद्ध होते हैं और न वह परमार्थमें ही अग्रसर हो सकता है। वह इतोभ्रष्ट-ततोभ्रष्ट होकर दु:खी जीवन व्यतीत करता है और दु:खी ही मरता है।

ज्ञानमार्गमें भी ब्रह्मचर्यको अत्यन्त आवश्यक माना गया है। छान्दोग्योपनिषद्में कथा आती है कि 'इन्द्रने प्रजापतिसे ज्ञानका उपदेश ग्रहण करनेके लिये एक सौ एक वर्षतक ब्रह्मचर्यका पालन किया था।' इसी प्रकार दधीचि ऋषिके पास अश्विनीकुमार ज्ञानोपदेशके लिये जाते हैं, तब उन्हें भी पहले दस वर्षतक ब्रह्मचर्यपालनके लिये कहा जाता है। तान्त्रिक-साधना एवं भक्ति-साधनामें भी ब्रह्मचर्यपर जोर दिया जाता है। सारांश यह कि जिस प्रकार लौकिक कार्योंमें सिद्धिके लिये ब्रह्मचर्यकी आवश्यकता है, उसी प्रकार परमार्थ-साधनमें भी ब्रह्मचर्यकी परमोपयोगिता है।

अष्टविध मैथुनके त्यागका नाम ही ब्रह्मचर्य है। अष्टविध मैथुनका प्रसंग विस्तारसे इसी पुस्तकमें प्रकाशित पिछले 'ब्रह्मचर्य' शीर्षक लेखमें आ चुका है। पूर्ण ब्रह्मचर्यके पालनके लिये उन सभी प्रकारके मैथुनोंका त्याग आवश्यक है। ब्रह्मचारी, वानप्रस्थ एवं संन्यासियोंको तो इन सभी प्रकारके मैथुनोंसे बचना ही चाहिये। गृहस्थोंको भी अपनी विवाहिता पत्नीको छोड़कर अन्य किसी भी स्त्रीके साथ न तो एकान्तमें मिलना चाहिये, न उनसे बातचीत करनी चाहिये, न उनकी ओर देखना चाहिये और न उनका चिन्तन ही करना चाहिये। अपनी विवाहिता स्त्रीके साथ भी अधिक संग करना सभी दृष्टियोंमें हानिकर है। पर-स्त्रियोंकी चर्चासे भी मनुष्यको सदा दूर रहना चाहिये। पर-स्त्रीका स्पर्श तो सर्वथा त्याज्य है ही। ये सभी क्रियाएँ मैथुनके ही अन्तर्गत

समझी जाती हैं। इन सब बातोंसे परहेज रखना चाहिये; क्योंकि मनुष्यका मन बड़ा चंचल होता है, वह किसी भी क्षण बिगड़ सकता है। शास्त्रोंने तो यहाँतक कहा है—

मात्रा स्वस्रा दुहित्रा वा न विविक्तासनो भवेत्।
बलवानिन्द्रियग्रामो विद्वांसमपि कर्षति॥

(मनु० २। २१५)

'अपनी माँ, बहिन अथवा पुत्रीके साथ भी एकान्तमें न रहे। इन्द्रियाँ बड़ी प्रबल होती हैं, वे विवेकी मनुष्यको भी पथभ्रष्ट कर देती हैं; फिर साधारण मनुष्योंकी तो बात ही क्या।'

आजकल पाश्चात्य शिक्षा एवं सभ्यताके प्रभावमें आकर हमलोग इन सारे बन्धनोंको क्रमशः शिथिल करते जा रहे हैं। आजकल स्त्री-पुरुषोंका परस्पर बेरोक-टोक मिलना, निःसंकोच सम्भाषण करना, गोष्ठियोंमें सम्मिलित होना, नाच-तमाशोंमें जाना, नाटक-सिनेमा देखना, नाचना आदि निर्दोष माने जाने लगे हैं। हमारे स्कूलों एवं कॉलेजोंमें लड़कियों एवं लड़कोंकी सहशिक्षाका प्रचार जोरोंसे बढ़ रहा है। इसका परिणाम दोनोंके लिये ही हानिकारक सिद्ध हो रहा है। जिन लोगोंने इसपर गहरा विचार किया है, उन सभीने इसके अनिष्टकर परिणामोंको स्वीकार किया है। साहित्यकी गति भी क्रमशः कुरुचिकी ओर जा रही है। चल-चित्रपटोंसे तो हमारे युवक-युवतियोंकी बड़ी हानि हो रही है। पर हमलोग आँख मूँदे हुए आधुनिकताके प्रवाहमें बहते चले जा रहे हैं। नैतिक हानि कोई विशेष हानि नहीं समझी जाती। स्त्रियोंमें सतीत्वका आदर्श क्रमशः लुप्त होता जा रहा है। व्यभिचार उतना हेय नहीं समझा जाता। विलासिता एवं अपनेको सजानेकी भावना क्रमशः प्रबल होती जा रही है। जीवन अधिकाधिक खर्चीला बन रहा है।

सबसे अधिक शोचनीय है—हमारे बालक-बालिकाओंमें गंदी और अश्लील प्रवृत्तियोंका बढ़ना। नैतिक एवं धार्मिक शिक्षाके अभाव, देख-रेखकी कमी तथा शृंगारकी भावनाने उन्हें कई प्रकारकी गर्हित

कुटेवोंका शिकार बना दिया है। खान-पानमें असंयम, कुरुचिपूर्ण साहित्य, नाटक-सिनेमा आदिमें बेरोक-टोक जाना, आदर्श चरित्रवान् शिक्षकोंकी कमी तथा अनुशासनका अभाव—ये सभी इस अवांछनीय स्थितिमें सहायक सिद्ध हुए हैं। फल यह हुआ है कि हमारे बालकोंमें बहुत-सी गंदी आदतें क्रमशः घर करती जा रही हैं। हमारे स्कूलों, कॉलेजों तथा उनसे सम्बद्ध छात्रावासोंकी बात तो जाने दीजिये, हमारी संस्कृत पाठशालाएँ तथा उनके छात्रावास—यहाँतक कि हमारे तथाकथित ऋषिकुल और गुरुकुल भी बुराइयोंसे नहीं बच पाये हैं। आये दिन हमें इस प्रकारकी शिकायतें सुननेको मिलती हैं और इधर तो कई बालकों एवं नवयुवकोंने हमें स्वयं आकर अपने दोष बताये हैं और उनसे उत्पन्न होनेवाले अनिष्टकर परिणामोंको स्वीकार किया है।

कहना न होगा कि इस प्रकारकी कुटेवोंसे हमारे बालकोंकी शारीरिक एवं नैतिक कितनी बड़ी हानि हो रही है। उनमेंसे कई सदाके लिये स्त्री-सुखसे सर्वथा वंचित हो जाते हैं—असमयमें ही नपुंसकताके शिकार हो जाते हैं तथा कुछ धातुक्षय, प्रमेह, यक्ष्मा आदि भयंकर रोगोंके चंगुलमें फँस जाते हैं। उनके स्नायु निर्बल हो जाते हैं; वे तेजहीन, निरुत्साह एवं मन्दबुद्धि हो जाते हैं और कई तो जीवनसे भी निराश हो जाते हैं। उनमें संतानोत्पादनकी क्षमता नहीं रह जाती और यदि संतान होती भी है तो वह दुर्बल, क्षीणकाय, रोगग्रस्त एवं अल्पायु होती है। बालक ही हमारे राष्ट्रकी नींव हैं। उनमें इस प्रकारकी हस्तमैथुन आदि बुराइयोंका आ जाना राष्ट्रके लिये बड़े खतरेकी चीज है। अतः हमें समय रहते चेत जाना चाहिये और शीघ्र-से शीघ्र इस बढ़ते हुए रोगकी चिकित्सा करनी चाहिये। यदि इसकी वृद्धिको समयपर नहीं रोका गया तो कभी यह इतना भयंकर रूप धारण कर सकता है कि फिर इसे सँभालना कठिन हो जायगा और हमारा राष्ट्र पतनके घोर गर्तमें गिर जायगा।

इस बीमारीको दूर करनेके लिये संक्षेपतः निम्नलिखित उपायोंको काममें लाना चाहिये। सबसे पहली आवश्यकता तो यह है कि हमारे

बालकोंको चरित्रवान् एवं आदर्श बनानेके लिये हम स्वयं चरित्रवान् एवं आदर्श बनें। बालकोंको चरित्रवान् अथवा चरित्रहीन बनानेमें उनके माता-पिता तथा शिक्षक ही प्रधान हेतु हैं। जबसे बालक गर्भमें आवे, तभीसे माता-पिताको इस बातका ध्यान रखना चाहिये कि उसपर अच्छे संस्कार पड़ें, बुरे संस्कार न पड़ने पायें। संस्कारोंकी प्रथा तो हमलोगोंमें क्रमशः उठती जा रही है। पहले हमलोगोंमें गर्भाधान-जैसी क्रिया भी, जो आजकल प्रायः काम-वासनाकी पूर्तिके लिये ही होती है, धार्मिक उद्देश्यसे एवं वैदिक विधिसे मन्त्रोच्चारणपूर्वक की जाती थी। गर्भाधानसे लेकर जन्मतक और जन्मसे लेकर विवाहपर्यन्त हमारे बालकोंके कई संस्कार होते थे, जिनसे उनकी बुद्धि एवं चरित्रपर बड़ा शुभ प्रभाव पड़ता था। उपनयन प्रायः पाँचसे बारह वर्षतककी अवस्थामें हो जाता था। उसके बाद कम-से-कम चौबीस वर्षकी अवस्थातक प्रत्येक द्विजाति बालकको ब्रह्मचर्यपूर्वक गुरुके घर रहकर वेदाध्ययन एवं अन्य शास्त्रोंका अभ्यास करना पड़ता था। इस कालमें उन्हें स्त्रियोंके संसर्ग एवं चर्चासे सर्वथा दूर रखा जाता था; उनकी दिनचर्या ऐसी होती थी कि उसमें उन्हें धार्मिक कृत्य, गुरुसेवा एवं अध्ययनसे फुर्सत ही नहीं मिलती थी। जिससे उन्हें कोई बुरी बात सोचनेका भी अवसर मिले। गुरुकुलोंका वातावरण अत्यन्त पवित्र होता था। गुरु भी परम आस्तिक, परम धार्मिक, आदर्श चरित्रवान् एवं तपस्वी होते थे। वे सर्वथा निःस्पृह एवं अर्थ-कामनाशून्य होते थे। उनका जीवन अत्यन्त सादा, तितिक्षापूर्ण एवं पवित्र होता था। वे शिष्योंद्वारा लायी हुई भिक्षापर ही निर्वाह करते थे और उनकी आवश्यकताएँ अत्यन्त परिमित होती थीं। वे बस्तीसे बहुत दूर जंगलोंमें रहते थे, जहाँ किसी प्रकारकी बुराई प्रवेश नहीं कर पाती थी।

बालकोंको कठोर, संयमपूर्ण जीवन बिताना पड़ता था। शृंगार अथवा शौकीनी तो उन्हें छूतक नहीं जाती थी। शरीर अथवा बालोंमें तेल लगाना, उबटन लगाना, सिले हुए वस्त्र पहनना, स्वादिष्ट भोजन करना—यहाँतक कि छाता एवं जूतातक रखना उनके लिये मना था।

वे जंगलोंसे गुरुके लिये लकड़ियाँ तोड़कर लाते थे, गुरुके पशुओंकी सेवा—सँभाल करते थे, गुरुके लिये पानी भरते थे और उनके अन्य कार्योंको सँभालते थे। इस प्रकार उनके जीवनमें सद्गुण, सदाचार, संयम, श्रमसहिष्णुता, पवित्रता, सेवाभाव, बड़ोंका आज्ञापालन, विनय, तितिक्षा और उपासना आदि गुण स्वाभाविक ही आ जाते थे। वे शरीर और मनसे बलवान्, दृढ़संकल्प, निर्भय एवं चरित्र और आत्मबलसे सम्पन्न होकर निकलते थे। गुरुसेवा, सद्गुण, सदाचार एवं उपासनासे उनकी बुद्धि भी बड़ी प्रखर एवं निर्मल हो जाती थी। वे गुरु-कृपासे अनायास ही बहुत थोड़े समयमें अनेक शास्त्रोंमें पारंगत हो जाते थे और उनकी विद्या-बुद्धि-विवेकका सारा जगत् लोहा मानता था। इस प्रकार हमारे बालक ओजस्वी एवं तेजस्वी होकर ही गृहस्थाश्रममें प्रवेश करते थे और इसके बाद योग्य कन्यासे धर्मपूर्वक विवाह करके धर्मपूर्वक ही जीवन व्यतीत करते थे। बचपनसे ही संयम एवं सदाचारकी शिक्षा पा लेनेके कारण वे गृहस्थाश्रममें भी बड़े ही संयम एवं पवित्रतासे रहते थे। केवल ऋणसे मुक्त होने तथा भगवान्के द्वारा प्रवर्तित सृष्टिचक्रको चलानेके उद्देश्यसे ही कामवासनाकी तृप्तिके लिये नहीं—ऋतुकालमें, वर्जित तिथियोंको छोड़कर अपनी विवाहिता पत्नीके साथ समागम करते थे और गर्भस्थितिके बाद पुनः ऋतुदर्शनके कालतक पत्नीसे अलग रहते थे।

समयके फेरसे परिस्थिति बिलकुल बदल गयी। आजकल तो आश्रम-व्यवस्थाके बिगड़ जानेसे समाजका सारा ढाँचा ही बदल गया है। न हमारा गृहस्थाश्रम ही आदर्श रह गया है और ब्रह्मचर्याश्रमका तो प्रायः लोप ही हो गया है। हमारा गृहस्थाश्रम आज विलासिता एवं असंयमका घर बन गया है। संस्कारोंकी प्रथा प्रायः उठ-सी गयी है। उपनयन भी कथनमात्र रह गया है। विवाहको धार्मिक बन्धन अथवा धार्मिक संस्कार माननेकी भावना भी धीरे-धीरे लुप्त होती जा रही है। जो आये दिन हिंदू-जनतापर हमारे ही भाइयोंद्वारा धर्मविरोधी कानून लादनेकी चेष्टा की जाती है। कानून हिंदू-कोड तो—विवाहकी

पवित्रताको, जो हिंदू-समाज व्यवस्थाकी भित्ति है, सर्वथा मटियामेट कर दे रहा है। स्त्री-समागम सर्वथा कामबुद्धिसे किया जाता है, ऋतुकालका कोई विचार नहीं रह गया है, संयमके दर्शन भी दुर्लभ हो रहे हैं। गर्भस्थितिके बाद भी प्रसव-कालके अत्यन्त निकटतक स्त्री-समागम प्रायः जारी रहता है। पवित्रताकी भावना कम रह गयी है। व्यभिचार, अनाचार बढ़ रहे हैं, जिसके कारण स्त्री-पुरुष सबकी बुद्धि प्रायः मलिन हो रही है। शास्त्रकी मर्यादा अथवा धर्मके बन्धनका विचार कम रह गया है। खान-पानकी पवित्रता तथा संयम उठता-सा जा रहा है। पवित्र-अपवित्र सभी चीजें मुँहमें डाल ली जाती हैं। जूठनका कोई ध्यान ही नहीं रखा जाता। ऊँच-नीच, सदाचारी-दुराचारी, पवित्र-अपवित्र सब प्रकारके लोगोंके साथ एक ही मेजपर तथा एक ही बर्तनमें बर्फ, सोडा-वाटर आदि पीना और भोजन करना एवं खाते समय एक-दूसरेको स्पर्श करना तथा जूठे हाथोंसे खाद्य-सामग्रीका आदान-प्रदान करना तो आजकल सभ्यताकी निशानी माना जाने लगा है। अभक्ष्य-भक्षणसे भी ग्लानि उठती जा रही है। झूठ, कपट, चोरी, बेईमानी घूसखोरी बढ़ रही है। प्रायः किसी भी क्षेत्रमें घूसके बिना काम निकालना कठिन हो रहा है। हिंसाकी ओरसे उदासीनता बढ़ रही है। इन सबका परिणाम यह हुआ है कि हमारे विचार दूषित हो गये हैं, बुद्धि मलिन हो गयी है और धार्मिक भावना क्रमशः नष्ट होती जा रही है। ऐसी दशामें हमारे बालक बिगड़ें तो इसमें आश्चर्य ही क्या है!

इधर हमारे स्कूलों एवं कॉलेजोंका वातावरण भी दिनोंदिन बिगड़ता जा रहा है। ऐसा होना भी स्वाभाविक ही है। स्कूलोंके प्रबन्धक तथा शिक्षक भी तो हमी लोग हैं और उनमें शिक्षा प्राप्त करनेवाले बालक हमारी ही संतान हैं। ऐसी दशामें उनका सुधार कैसे हो। पहलेकी भाँति आजकलके अधिकांश शिक्षकोंमें न तो त्याग और तितिक्षा है, न संयम और सदाचार है, न सादगी और पवित्रता है। धार्मिक भावना, आस्तिक बुद्धि एवं नैतिक बलका भी प्रायः अभाव देखा जाता है। छात्रोंके

सामनेतक अध्यापक बीड़ी, सिगरेट पीनेमें नहीं हिचकते, नाटक-सिनेमाओंमें उन्हें साथ लेकर जाते हैं तथा उनके साथ निःसंकोच हँसी-मजाक करते पाये जाते हैं। ऐसी दशामें बालकोंपर उनका अच्छा प्रभाव कैसे पड़े। इधर बालकोंमें हमारी देखा-देखी शृंगारकी भावना बचपनसे ही घर कर लेती है। हम स्वयं भी अपने बालकोंको अच्छे-से-अच्छा सजा हुआ देखना चाहते हैं। सादगी, संयम और निरभिमानसे उन्हें कोसों दूर रखा जाता है। नाटक-सिनेमा, क्लब आदिका भी उनपर अत्यन्त अवांछनीय प्रभाव पड़ रहा है।

इन सब बुराइयोंसे बचनेके लिये हमें सर्वप्रथम स्वयं संयमी एवं सदाचारी बनना होगा। गर्भाधानसे लेकर बच्चा पैदा होनेतक पिता-माता दोनोंको बड़े संयमसे रहना चाहिये। माताको विशेषरूपसे पवित्रताका ध्यान रखना चाहिये। गर्भिणी अवस्थामें स्त्रीके साथ समागम शारीरिक एवं नैतिक—सभी दृष्टियोंसे हानिकारक है। उसका गर्भस्थ शिशुपर बड़ा ही अवांछनीय प्रभाव पड़ता है। माताको जबतक बालक पेटमें रहे, बड़े ही संयम एवं पवित्रतासे रहना चाहिये। भोजन शुद्ध और सात्त्विक हो—इसका पूरा ध्यान रखना चाहिये। चित्तको सदा प्रसन्न एवं सुन्दर विचारोंसे पूर्ण रखना चाहिये। गंदे चित्रों एवं गंदे वातावरणसे सर्वथा दूर रहना चाहिये। अच्छे ग्रन्थोंका अध्ययन एवं श्रवण करना चाहिये, आदर्श महापुरुषोंकी जीवनियाँ पढ़नी-सुननी चाहिये। प्रह्लादकी माता प्रह्लादकी गर्भावस्थामें देवर्षि नारदके आश्रममें तथा उन्हींकी देख-रेखमें रही थी। इसीका परिणाम यह था कि उसकी कोखसे प्रह्लाद-जैसा अनुपम भक्त पैदा हुआ। वीरवर नेपोलियन बोना-पार्टका युद्धक्षेत्रमें ही जन्म हुआ था। इन सब उदाहरणोंसे यह स्पष्ट हो जाता है कि गर्भस्थ शिशुपर हम जैसा चाहें वैसा प्रभाव डाल सकते हैं।

बालकके जन्मके बाद भी हमें अपनी चेष्टाओंका पूरा-पूरा ध्यान रखना चाहिये। हमारे द्वारा ऐसी कोई भी क्रिया नहीं होनी चाहिये जिसका बालकपर दूषित प्रभाव पड़े। अत्यन्त छोटे बालकके सामने

भी हमें किसी प्रकारकी अश्लील और गंदी चेष्टा नहीं करनी चाहिये। इस बातका भी पूरा ध्यान रखना चाहिये कि हमारी कोई भी कामचेष्टा बालकोंकी जानकारीमें न हो। गंदे चित्र अथवा गंदा साहित्य कभी बालकोंके हाथमें न जाय—इस विषयमें पूरी सतर्कता रहनी चाहिये। उनके सामने ऐसी कोई चर्चा भी नहीं होनी चाहिये, जिससे उनमें कामभाव जाग्रत् हो अथवा कामविषयक जिज्ञासा उत्पन्न हो। खेलमें भी उनके गुप्त इन्द्रियोंका स्पर्श नहीं करना चाहिये। नौकरोंको भी इस विषयमें सावधान कर देना चाहिये। बल्कि जहाँतक हो सके, बालकोंकी देख-रेखका भार अपने ही ऊपर रखना चाहिये, उन्हें नौकरोंके हाथमें देकर सर्वथा निश्चिन्त नहीं हो जाना चाहिये। आजकल बड़े और शिक्षित घरानोंमें प्रायः बालकोंको विदेशी नर्सोंके हाथमें सौंप दिया जाता है, जिससे उनमें बचपनसे ही विदेशी भाव घर कर लेते हैं और वे मातृस्नेहसे वंचित कर दिये जाते हैं। इससे माताओंमें मातृत्वकी भावना जाती रहती है। जहाँतक हो सके इसका पूरा ध्यान रखना चाहिये कि बच्चोंमें शृंगारकी भावना जाग्रत् न हो। इसके लिये हमें स्वयं सजावटसे दूर रहना होगा। बालकोंको साफ-सुथरा अवश्य रखना चाहिये, परंतु सजानेकी भावना नहीं होनी चाहिये। सद्‌गुण-सदाचार ही हमारा वास्तविक शृंगार होना चाहिये। हमारी संतान गुणवान्, चरित्रवान् एवं बलवान् बने—इसीकी चेष्टा हमें करनी चाहिये। बालकोंको अधिक मिठाई, खटाई तथा मिर्च आदि उत्तेजक पदार्थोंसे भी दूर रखना चाहिये। मांस, अंडे तो शारीरिक एवं धार्मिक—सभी दृष्टियोंसे हानिकारक और अप्राकृत हैं ही; लहसुन, प्याज, चाय, काफी, तम्बाकू, पान, बीड़ी, सिगरेट आदिका सेवन भी हानिकारक है। परन्तु अपनी संतानको इन सबसे अलग रखनेके लिये हमें भी इन सबका त्याग करना होगा। बालकोंका जीवन पवित्र बने—इसके लिये हमें बड़े-से-बड़े त्यागके लिये भी प्रस्तुत रहना चाहिये। बालकोंका जीवन नियमित बने—इसकी भी हमें पूरी चेष्टा करनी चाहिये। उनमें

प्रारम्भसे ही सूर्योदयसे पूर्व उठने, उठते ही शौचसे निवृत्त होने तथा सर्दीसे बचते हुए यथासम्भव बारहों महीने ताजे जलसे स्नान करनेकी आदत डालनी चाहिये। लघुशंकाके बाद मूत्रेन्द्रियको ठंडे जलसे धोनेका अभ्यास भी डालना सभी दृष्टियोंसे अच्छा है। बालकोंको कब्जकी शिकायत न हो—इसका पूरा ध्यान रखना चाहिये। कब्जसे मूत्रेन्द्रियमें उत्तेजना आती है और उससे बालक कई प्रकारकी कुटेवोंके शिकार बन जाते हैं, बालकोंका भोजन सदा शुद्ध एवं सात्त्विक होना चाहिये; उसमें परिस्थितिके अनुसार दूधकी मात्रा अधिक होनी चाहिये तथा अन्न एवं जलकी मात्रा नियमित होनी चाहिये। उन्हें भोजन आदि समयपर ही दिया जाना चाहिये और दावतों आदिमें तथा खेल-तमाशों एवं ब्याह-शादी आदिमें यथासम्भव नहीं भेजना चाहिये; क्योंकि ऐसे अवसरोंपर हमलोगोंके यहाँ प्राय: सभी प्रकारके असंयम बरते जाते हैं, जिनका कोमलमति बालकोंपर बड़ा ही अवांछनीय प्रभाव पड़ता है।

बालकोंकी दिनचर्यापर तथा वे किस समय कहाँ जाते और किन-किनसे मिलते हैं तथा किस-किसके सम्पर्कमें आते हैं—इसपर भी पूरा नियन्त्रण एवं देख-रेख रहनी चाहिये। बालकोंको स्वतन्त्र छोड़ना उनका अनिष्ट करना—उन्हें सर्वथा उच्छृंखलता बना देना है। उन्हें सदा-सर्वदा अपनी दृष्टिमें रखना चाहिये और किसी भी प्रकारका अनिष्ट प्रभाव उनपर न पड़े, इसका पूरा ध्यान रखना चाहिये। वे किस प्रकार उठते-बैठते हैं, किस समय किस प्रकार चलते हैं, किस प्रकार क्या खाते-पीते हैं, किस प्रकार सोते हैं—इन सभी बातोंपर हमें पूरी दृष्टि रखनी चाहिये। जबतक उनकी बुद्धि परिपक्व न हो जाय, जबतक उन्हें अपने हिताहितका ज्ञान न हो जाय, जबतक उनका विवाह न हो जाय, बल्कि उसके बाद भी उनके चरित्रपर पूरी दृष्टि रखनी चाहिये और उनमें किसी प्रकारका दोष दीखनेपर उन्हें तुरंत सतर्क कर देना चाहिये; जिससे वह दोष बढ़ने न पाये। स्कूलों एवं कॉलेजोंके संचालकों एवं प्रबन्धकोंको विशेषकर अध्यापकों एवं छात्रावासके अध्यक्षोंको भी माता-पिताकी भाँति ही अपनी जिम्मेवारीको

पूरी तरहसे समझते हुए इस विषयमें पूरी सतर्कता रखनी चाहिये और स्वयं भी आदर्श जीवन बितानेकी चेष्टा करनी चाहिये, जिससे बालकोंपर उनका अच्छा प्रभाव पड़े। स्कूलों, कॉलेजों एवं विश्वविद्यालयोंमें जहाँतक सम्भव हो, चरित्रवान् व्यक्ति ही अध्यापक आदिके पदोंपर रखे जायँ, केवल उनकी शिक्षासम्बन्धी योग्यतापर ही संतोष न कर लिया जाय। विशेषकर मुख्याध्यापक तथा छात्रावासोंके अध्यक्ष तो चरित्रवान् होने ही चाहिये। शिक्षकोंको भी, जहाँतक हो सके, सादा जीवन व्यतीत करना चाहिये और स्वाद-शौकीनीसे सर्वथा दूर रहना चाहिये। पान, तम्बाकू, बीड़ी आदिका भूलकर भी व्यवहार नहीं करना चाहिये और चाय, काफी आदिसे भी परहेज रखना चाहिये। ऋषिकुलों, आश्रमों, स्कूलों तथा कॉलेजोंमें धार्मिक एवं नैतिक शिक्षाका भी अवश्य प्रबन्ध होना चाहिये और हमारे बालक बुद्धिमान् एवं विद्वान् होनेके साथ-साथ ओजस्वी, तेजस्वी, सच्चरित्र, परम आस्तिक एवं धर्मभीरु भी बनें, इसकी पूरी चेष्टा होनी चाहिये। इन सब बातोंपर यदि सामूहिकरूपसे ध्यान दिया जाकर पूरी तत्परताके साथ इनका पालन करनेकी चेष्टा की जाय तो आशा है, हमारे बालकोंका बहुत अंशोंमें सुधार हो सकता है और वे आगे चलकर हमारे राष्ट्र एवं समाजकी नौकाके सुनिपुण कर्णधार बनकर भारतका मुख उज्ज्वल कर सकते हैं। भगवान् सदा हमारे साथ हैं, उन्हें सहायक मानकर यदि इस दिशामें समुचित प्रयत्न किया जायगा तो सफलता निश्चित है। अतः हम सबको मिलकर इस दिशामें संघटित प्रयत्न अवश्य करना चाहिये।

चतुःश्लोकी भागवत

श्रीभगवानुवाच—

ज्ञानं परमगुह्यं मे यद् विज्ञानसमन्वितम्।
सरहस्यं तदङ्गं च गृहाण गदितं मया॥

(श्रीमद्भा० २।९।३०)

श्रीभगवान् बोले—

		(ब्रह्मन्!)	**सरहस्यम्**	=	रहस्यसहित
मे	=	मेरा	**तदङ्गम्**	=	उसके अंगोंका
यत्	=	जो	**मया**	=	मेरेद्वारा
परमगुह्यम्	=	परम गोपनीय	**गदितम्**	=	वर्णन किया जाता है,
विज्ञान-समन्वितम्	=	विज्ञानसहित	**(तत्)**	=	उसे
ज्ञानम्	=	ज्ञान है, उसका	**गृहाण**	=	तुम ग्रहण करो।
च	=	तथा			

व्याख्या—ब्रह्मन्! मेरे निर्गुण-निराकार सच्चिदानन्दघन स्वरूपके तत्त्व, प्रभाव, माहात्म्यका यथार्थ ज्ञान ही 'ज्ञान' है तथा सगुण-निराकार और दिव्य साकारस्वरूपके लीला, गुण, प्रभाव, तत्त्व, रहस्य और माहात्म्यका वास्तविक ज्ञान ही 'विज्ञान' है। यह विज्ञानसहित ज्ञान समस्त गुह्य और गुह्यतर विषयोंसे भी अतिशय गुह्य—गोपनीय है, इसलिये यह परमगुह्य—सबसे बढ़कर गुप्त रखनेयोग्य है। ऐसे परम गोपनीय ज्ञानके साधनोंका मैं रहस्यसहित वर्णन करता हूँ, तुम उसे सुनकर धारण करो—

भगवान् श्रीकृष्णने गीतामें अर्जुनसे भी प्रायः इसी प्रकार कहा है—

इदं तु मे गुह्यतमं प्रवक्ष्याम्यनसूयवे।
ज्ञानं विज्ञानसहितं यज्ज्ञात्वा मोक्ष्यसेऽशुभात्॥

(९।१)

'तुझ दोषदृष्टिरहित भक्तके लिये इस गुह्यतम—परम गोपनीय विज्ञानसहित ज्ञानको (पुनः) भलीभाँति कहूँगा, जिसको जानकर तू दुःखरूप संसारसे मुक्त हो जायगा।'

यावानहं यथाभावो यद्रूपगुणकर्मकः।
तथैव तत्त्वविज्ञानमस्तु ते मदनुग्रहात्॥

(श्रीमद्भा० २।९।३१)

अहम्	= मैं	**तत्त्वविज्ञानम्**	= उन सबके तत्त्वका विज्ञान
यावान्	= जितना हूँ,	**ते**	= तुम्हें
यथाभावः	= जिस भावसे युक्त हूँ,	**मदनुग्रहात्**	= मेरी कृपासे
यद्रूपगुण-कर्मकः	= जिन रूप, गुण और लीलाओंसे समन्वित हूँ,	**तथैव**	= ज्यों-का-त्यों
		अस्तु	= प्राप्त हो जाय।

व्याख्या—सगुण-निर्गुण, साकार-निराकार, व्यक्त-अव्यक्त, स्थूल-सूक्ष्म, जड-चेतन, यावन्मात्र—जितना जो कुछ भी है, वह सब मैं परब्रह्म परमात्मा ही हूँ तथा मैं सच्चिदानन्दमय भावस्वरूप हूँ एवं क्षमा, दया, शान्ति, समता, ज्ञान, प्रेम, उदारता, वात्सल्य, सौहार्द आदि अनन्त असीम दिव्य गुणोंसे सम्पन्न तथा लोगोंका उद्धार करनेके लिये नानाविध दिव्य अलौकिक कर्म—लीलाओंसे युक्त जो मेरा सगुण-साकार रूप है, मेरे उसे विज्ञानसहित ज्ञानमय समग्र स्वरूपका तत्त्व तुम्हें मेरी कृपासे ज्यों-का-त्यों प्राप्त हो जाय।

अहमेवासमेवाग्रे नान्यद् यत् सदसत् परम्।
पश्चादहं यदेतच्च योऽवशिष्येत सोऽस्म्यहम्॥ ३२॥

(श्रीमद्भा० २। ९। ३२)

अग्रे	=	सृष्टिके पूर्व	असत्	=	असत् (क्षर)
एव	=	भी	परम्	=	और उससे परे (पुरुषोत्तम) है, (वह सब मैं ही हूँ)
अहम्	=	मैं			
एव	=	ही			
आसम्	=	था			
अन्यत्	=	मुझसे भिन्न कुछ भी	पश्चात्-अहम्	=	(तथा) सृष्टिकी सीमाके बाद भी मैं ही हूँ
न	=	नहीं था			
च	=	और			
यत्	=	(सृष्टिके उत्पन्न होनेके बाद) जो कुछ भी	यः	=	(एवं इन सबका नाश हो जानेपर) जो कुछ
एतत्	=	यह दृश्यवर्ग है, (वह मैं ही हूँ।)	अवशिष्येत	=	बच रहता है,
			सः	=	वह (सब भी)
यत्	=	जो	अहम्	=	मैं (ही)
सत्	=	सत् (अक्षर)	अस्मि	=	हूँ।

व्याख्या—सृष्टि—महासर्गके पूर्व भी मैं ही था। मेरे सिवा और कुछ भी नहीं था और सृष्टिके उत्पन्न होनेके बाद जो कुछ भी यह दृश्यवर्ग है, वह मैं ही हूँ तथा सत्—अक्षर और असत्—क्षर एवं उससे परे जो पुरुषोत्तम ईश्वर है, सब मेरा ही स्वरूप है (**'सदसच्चाहमर्जुन'**—गीता ९। १९; **'सदसत् तत्परं यत्'**—गीता ११। ३७)। तथा सृष्टिकी सीमाके पश्चात्—जहाँ सृष्टि नहीं है, वहाँ जो केवल निर्विशेष

सच्चिदानन्द ब्रह्म है, वह भी मैं ही हूँ और सृष्टिका विनाश होनेपर जो शेषमें बच रहता है, वह भी मैं ही हूँ।

अभिप्राय यह है कि जैसे बादलोंके उत्पन्न होनेसे पहले केवल आकाश ही था, उसके सिवा और कुछ भी नहीं था तथा बादल और उनका गरजना-बरसना, बिजलीका चमकना आदि सब आकाश ही है; क्योंकि आकाशसे वायु, वायुसे अग्नि, अग्निसे जल और जलसे पृथ्वीकी उत्पत्ति हुई है—'**आकाशाद् वायुः। वायोरग्निः। अग्नेरापः। अद्भ्यः पृथिवी।**' (तैत्तिरीय-उप० वल्ली २, अनु० १)। अतः आकाश ही वायु, तेज, जल, पृथ्वीका मूल कारण होनेसे यह सब कुछ आकाश ही है तथा जहाँ बादल नहीं है, वहाँ बादलोंकी सीमाके परे भी आकाश ही है एवं बादल आदिका विनाश होनेपर केवल आकाश ही रह जाता है। उसी प्रकार परब्रह्म परमात्मा सृष्टिके आदि, मध्य और अन्तमें तथा उसकी सीमाके परे भी सदा ही विद्यमान रहते हैं।

भगवान्‌ने गीतामें भी कहा है—

सर्गाणामादिरन्तश्च मध्यं चैवाहमर्जुन।

(१०।३२)

'अर्जुन! सृष्टियोंका आदि और अन्त तथा मध्य भी मैं ही हूँ।'

यच्चापि सर्वभूतानां बीजं तदहमर्जुन।
न तदस्ति विना यत्स्यान्मया भूतं चराचरम्॥

(गीता १०।३९)

'एवं अर्जुन! जो सब भूतोंकी उत्पत्तिका कारण है, वह भी मैं ही हूँ; क्योंकि ऐसा चर और अचर कोई भी प्राणी नहीं है, जो मुझसे रहित हो।'

अतः भागवतके उपर्युक्त श्लोकोंमें भगवान्‌ने ब्रह्माजीको यही भाव समझाया है—

मत्तः परतरं नान्यत् किञ्चिदस्ति धनंजय।

(गीता ७। ७)

'मुझसे भिन्न अन्य कुछ भी नहीं है।'

ऋतेऽर्थं यत् प्रतीयेत न प्रतीयेत चात्मनि।
तद् विद्यादात्मनो मायां यथाऽऽभासो यथा तमः॥

(श्रीमद्भा० २। ९। ३३)

यथा	= जैसे	**च**	= एवं
आभासः	= आभास अर्थात् किसी वस्तुका प्रतिबिम्ब वास्तवमें कोई वस्तु नहीं है प्रतीतिमात्र ही है, (उसी प्रकार) (मुझ) परमार्थ	**यथा**	= जैसे (विद्यमान होते हुए भी)
अर्थम्	= वस्तुरूप परमात्माके	**तमः**	= तम अर्थात् राहु ग्रहकी प्रतीति नहीं होती, (इसी प्रकार वास्तवमें सत् होते हुए भी जो मुझ परमात्माकी)
ऋते	= अतिरिक्त	**न प्रतीयेत**	= प्रतीति नहीं होती
आत्मनि	= परमात्मामें	**तत्**	= यह दोनों प्रकारकी ही
यत्	= जो कुछ	**आत्मनः**	= मेरी
प्रतीयेत	= प्रतीत होता है, (वह वास्तवमें कुछ नहीं है)	**मायाम्**	= माया है—(यों)
		विद्यात्	= समझना चाहिये।

व्याख्या—जैसे नेत्रोंके दोषसे आकाशमें तिलमिले या जाले से दिखलायी पड़ते हैं अथवा दर्पणमें प्रतिबिम्ब दिखलायी पड़ता है, पर वास्तवमें वे हैं नहीं, उसी प्रकार सच्चिदानन्दघन परमात्मामें परमात्मासे भिन्न प्रकृतिका कार्यरूप यह जडवर्ग माया (अज्ञान)-के कारण बिना हुए ही प्रतीत होता है; तथा जैसे आकाशमें विद्यमान रहते हुए भी राहु ग्रह दिखलायी नहीं पड़ता, उसी प्रकार वह सच्चिदानन्द परमात्मा वास्तवमें ध्रुव सत्य होनेपर भी माया (अज्ञान)-के कारण प्रतीत नहीं होता। बिना हुए ही इस जड संसारकी प्रतीति होना और वास्तवमें सत् होते हुए भी परमात्माकी प्रतीति न होना—इन दोनोंमें माया (अज्ञान) ही कारण है।

यथा महान्ति भूतानि भूतेषूच्चावचेष्वनु।
प्रविष्टान्यप्रविष्टानि तथा तेषु न तेष्वहम्॥

(श्रीमद्भा० २। ९। ३४)

यथा	=	जैसे	**तथा**	=	उसी प्रकार
उच्चावचेषु भूतेषु	=	प्राणियोंके छोटे-बड़े शरीरोंमें (आकाशादि)	**तेषु**	=	उनमें (मैं प्रविष्ट हूँ भी)
महान्ति भूतानि	=	पाँच महाभूत	**तेषु**	=	(और वास्तवमें) उनमें
प्रविष्टानि	=	प्रविष्ट भी हैं (और)	**अहम्**	=	मैं
अप्रविष्टानि	=	प्रविष्ट नहीं भी हैं,	**न**	=	प्रविष्ट नहीं हूँ।

व्याख्या—जैसे पाँचों महाभूत प्राणियोंके छोटे-बड़े शरीरोंमें प्रविष्ट हुए दिखायी देते हैं, उसी प्रकार मैं उन सब शरीरोंमें प्रविष्ट हुआ-सा दिखलायी पड़ता हूँ; परन्तु वास्तवमें पाँचों महाभूत उन शरीरोंमें प्रविष्ट (आबद्ध) नहीं हैं, उसी प्रकार मैं भी उनमें प्रविष्ट (आबद्ध) नहीं हूँ।

भाव यह है कि जैसे आकाशके कार्यरूप बादलोंके समुदायमें आकाश प्रविष्ट हुआ-सा प्रतीत होता है, किंतु वास्तवमें वह उनमें प्रविष्ट नहीं है; क्योंकि बादलोंके नाशसे आकाशका नाश नहीं होता, बादलोंके न रहनेपर भी आकाश रहता है और बादलोंके एक स्थानसे दूसरे स्थानमें चले जानेपर आकाशका उनके साथ गमन नहीं होता; इसी दृष्टिसे बादलोंमें होते हुए भी आकाश उनमें प्रविष्ट (आबद्ध) नहीं है। आकाशकी भाँति ही कोई भी महाभूत अपने कार्यमें आबद्ध नहीं है। उसी प्रकार परमात्मा भी समस्त जगत्‌में प्रविष्ट हुए-से प्रतीत होते हैं, परन्तु वास्तवमें वे जगत्‌में प्रविष्ट (आबद्ध) नहीं हैं; क्योंकि वे निर्विकार, निष्क्रिय और निर्लेप हैं। समस्त जगत्‌का नाश होनेपर भी परमात्मा विद्यमान रहते हैं। जिस जगह जगत् नहीं है, वहाँ भी परमात्मा विद्यमान हैं।

एतावदेव जिज्ञास्यं तत्त्वजिज्ञासुनाऽऽत्मनः।
अन्वयव्यतिरेकाभ्यां यत् स्यात् सर्वत्र सर्वदा॥

(श्रीमद्भा० २। ९। ३५)

आत्मनः = परमात्माके

तत्त्वजिज्ञासुना = तत्त्वको जाननेकी इच्छावाले मनुष्यको

अन्वय-व्यतिरेका-भ्याम् = विधिरूपसे अर्थात् 'परमात्मा ऐसे हैं,' 'परमात्मा ऐसे हैं'—इस भावसे तथा निषेधरूपसे अर्थात् 'परमात्मा ऐसे भी नहीं', 'परमात्मा ऐसे भी नहीं'—इस भावसे

एतावत् = इतना

एव = ही

जिज्ञास्यम् = जानना आवश्यक है

यत्	=	कि (परमात्मा ही)	सर्वदा	=	(और) सब कालमें
सर्वत्र	=	सब देशमें	स्यात्	=	विद्यमान हैं।

व्याख्या—परमात्मा विज्ञानानन्दघन हैं, सदा सबमें समभावसे स्थित हैं, सर्वव्यापी, सर्वत्र परिपूर्ण और परम शान्तिस्वरूप हैं—इत्यादि जो परमात्माके स्वरूपका वर्णन विधिरूपसे किया जाता है, यही परमात्माके स्वरूपका 'अन्वय' रूपसे वर्णन है। एवं परमात्मा आकारवाला नहीं, विकारोंवाला नहीं, क्रियावाला नहीं, मनके द्वारा चिन्तनमें आनेवाला नहीं, संकेतमें आनेवाला नहीं, व्यक्त नहीं, चलनशील नहीं, शान्त नहीं, सीमावाला नहीं इत्यादि जो परमात्माके स्वरूपका निषेधरूपसे वर्णन किया जाता है, यही परमात्माके स्वरूपका 'व्यतिरेक' रूपसे वर्णन है।

परमात्माके स्वरूपको तत्त्वत: जाननेकी इच्छावाले साधकको चाहिये कि उपर्युक्त दोनों प्रकारोंसे यही निश्चय करे कि एक सच्चिदानन्दघन परब्रह्म परमात्मा ही सब देश और सब कालमें विद्यमान हैं, उनसे भिन्न कुछ नहीं है।

एतन्मतं समातिष्ठ परमेण समाधिना।
भवान् कल्पविकल्पेषु न विमुह्यति कर्हिचित्॥

(श्रीमद्भा० २। ९। ३६)

भवान्	=	(ब्रह्मन्!) तुम	समातिष्ठ	=	भलीभाँति स्थित हो जाओ। (इससे तुम)
परमेण	=	उत्कृष्ट			
समाधिना	=	समाधिके द्वारा	कल्प-विकल्पेषु	=	कल्प-कल्पान्तरोंमें भी
एतत्	=	मेरे इस			
मतम्	=	सिद्धान्तमें			

कर्हिचित्	=	कभी कहीं भी	**न विमुह्यति**	=	मोहित नहीं होओगे।

व्याख्या—ब्रह्मन्! तुम सब प्रकारके विकल्पोंसे रहित परम समाधिमें स्थित होकर निश्चयपूर्वक मेरे इस उपर्युक्त सिद्धान्तको भलीभाँति स्वीकार करो। यों करनेसे तुम अनेक कल्प-कल्पान्तरोंमें सृष्टिकी रचना करते हुए कभी कहीं भी मोहित नहीं होओगे।

इस प्रकार भगवान् विष्णुने ब्रह्माजीको आदेश दिया है। अतः साधकको चाहिये कि वह सब प्रकारसे यही निश्चय करे कि एक सच्चिदानन्दघन परब्रह्म परमात्मा ही सब देश और सब कालमें विद्यमान हैं, उनसे भिन्न कुछ नहीं है। यों करनेसे वह शोक-मोहादि सम्पूर्ण विकारों और दुःखोंसे मुक्त हो परम शान्तिस्वरूप परमात्माको प्राप्त हो सकता है।

त्वमेव माता च पिता त्वमेव
त्वमेव बन्धुश्च सखा त्वमेव।
त्वमेव विद्या द्रविणं त्वमेव
त्वमेव सर्वं मम देवदेव॥

गजलगीता

प्रथमहिं गुरुको शीश नवाऊँ। हरिचरणोंमें ध्यान लगाऊँ॥ १ ॥
गजल सुनाऊँ अद्भुत यार। धारणसे हो बेड़ा पार॥ २ ॥
अर्जुन कहै सुनो भगवाना। अपने रूप बताये नाना॥ ३ ॥
उनका मैं कछु भेद न जाना। किरपा कर फिर कहो सुजाना॥ ४ ॥
जो कोई तुमको नित ध्यावे। भक्तिभावसे चित्त लगावे॥ ५ ॥
रात दिवस तुमरे गुण गावे। तुमसे दूजा मन नहिं भावे॥ ६ ॥
तुमरा नाम जपे दिन रात। और करै नहिं दूजी बात॥ ७ ॥
दूजा निराकारको ध्यावे। अक्षर अलख अनादि बतावे॥ ८ ॥
दोनों ध्यान लगानेवाला। उनमें कुण उत्तम नँदलाला॥ ९ ॥
अर्जुनसे बोले भगवान्। सुन प्यारे कछु देकर ध्यान॥ १० ॥
मेरा नाम जपै जपवावे। नेत्रोंमें प्रेमाश्रू छावे॥ ११ ॥
मुझ बिनु और कछू नहिं चावे। रात दिवस मेरा गुण गावे॥ १२ ॥
सुनकर मेरा नामोच्चार। उठै रोम तन बारम्बार॥ १३ ॥
जिनका क्षण टूटै नहिं तार। उनकी श्रद्धा अटल अपार॥ १४ ॥
मुझमें जुड़कर ध्यान लगावे। ध्यान समय विह्वल हो जावे॥ १५ ॥
कंठ रुके बोला नहिं जावे। मन बुधि मेरे माँहि समावे॥ १६ ॥
लज्जा भय रु बिसारे मान। अपना रहे न तनका ज्ञान॥ १७ ॥
ऐसे जो मन ध्यान लगावे। सो योगिनमें श्रेष्ठ कहावे॥ १८ ॥
जो कोइ ध्यावे निर्गुण रूप। पूर्ण ब्रह्म अरु अचल अनूप॥ १९ ॥
निराकार सब बेद बतावे। मन बुद्धी जहँ थाह न पावे॥ २० ॥

जिसका कबहुँ न होवे नाश। ब्यापक सबमें ज्यों आकाश॥ २१॥
अटल अनादी आनन्दघन। जाने बिरला योगीजन॥ २२॥
ऐसा करे निरन्तर ध्यान। सबको समझे एक समान॥ २३॥
मन इन्द्रिय अपने वश राखे। विषयनके सुख कबहुँ न चाखे॥ २४॥
सब जीवोंके हितमें रत। ऐसा उनका सच्चा मत॥ २५॥
वह भी मेरे ही को पाते। निश्चय परमा गतिको जाते॥ २६॥
फल दोनोंका एक समान। किन्तु कठिन है निर्गुण ध्यान॥ २७॥
जबतक है मनमें अभिमान। तबतक होना मुश्किल ज्ञान॥ २८॥
जिनका है निर्गुणमें प्रेम। उनका दुर्घट साधन नेम॥ २९॥
मन टिकनेको नहीं अधार। इससे साधन कठिन अपार॥ ३०॥
सगुण ब्रह्मका सुगम उपाय। सो मैं तुझको दिया बताय॥ ३१॥
यज्ञ दानादि कर्म अपारा। मेरे अर्पण कर कर सारा॥ ३२॥
अटल लगावे मेरा ध्यान। समझे मुझको प्राण समान॥ ३३॥
सब दुनियाँसे तोड़े प्रीत। मुझको समझे अपना मीत॥ ३४॥
प्रेममग्न हो अती अपार। समझे यह संसार असार॥ ३५॥
जिसका मन नित मुझमें यार। उनसे करता मैं अति प्यार॥ ३६॥
केवट बनकर नाव चलाऊँ। भवसागरके पार लगाऊँ॥ ३७॥
यह है सबसे उत्तम ज्ञान। इससे तूँ कर मेरा ध्यान॥ ३८॥
फिर होवेगा मोहि समान। यह कहना मम सच्चा जान॥ ३९॥
जो चाले इसके अनुसार। वह भी हो भवसागर पार॥ ४०॥

(सोते समय पाठ करना चाहिये।)